अक्टूबर, 2024–मार्च, 2025

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैविध्यपूर्ण प्रस्तुति

समकालीन अभिव्यक्ति

मूल्य : ₹ 70

सदस्य बनें

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैविध्यपूर्ण प्रस्तुति

समकालीन अभिव्यक्ति

(त्रैमासिक पत्रिका)

'समकालीन अभिव्यक्ति' एक साहित्यिक आन्दोलन है। कोई भी आन्दोलन जन भागीदारी के बिना सफल नहीं हो सकता। कृपया पत्रिका से जुड़कर आन्दोलन की सफलता सुनिश्चित करें। आपकी सदस्यता पत्रिका के लिए प्राणवायु है। वार्षिक या आजीवन सदस्य बनकर आप पत्रिका को दीर्घजीवी बना सकते हैं।

सदस्यता शुल्क हेतु बैंक खाते का विवरण

A/C NO : **50100251363948**
A/C Holder's Name : **POONAM MISHRA**
Bank Name : **HDFC BANK LTD**
IFSC CODE : **HDFC0001671**

सम्पादक

'समकालीन अभिव्यक्ति'

फ्लैट नं 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं. 7,
महरौली, नई दिल्ली - 110030

कृपया ध्यान दें

पत्रिका की वेबसाइट का पता बदल गया है।
नया पता है –

www.samkaleenabhivyakti.in

–सम्पादक

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैविध्यपूर्ण प्रस्तुति

समकालीन अभिव्यक्ति

वर्ष 22-23, अंक 92-93 अक्टूबर, 2024-मार्च, 2025

संपादक
उपेन्द्र कुमार मिश्र
093 50899583

सहसंपादक
हरिशंकर राढ़ी
0965403 0701

दर्शन एवं संस्कृति संपादक
संतोष कुमार शुक्ल

सहायक संपादक
नवल किशोर भट्ट

मुखपृष्ठ
वास्तविक छायाचित्र

टाइप सेटिंग
विनोद यादव
98913 53 13 9

वेबसाइट
www.samkaleenabhivyakti.in

संपादकीय सम्पर्कः
फ्लैट नं 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं। 7,
महरौली, नई दिल्ली-30
EA mail: samkaleenabhivyakti@gmail.com

पत्रिका शुल्कः

इस अंक का मूल्य प्रति- 70/-, वार्षिक- 80/-
वार्षिक (संस्था) 100/-, आजीवन- 1000/-

संपादन/संचालन-पूर्णतया अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री में व्यक्त विचारों से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है।

समकालीन अभिव्यक्ति से संबंधित सभी विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

स्वामी/प्रकाशक/मुद्रक-उपेन्द्र कुमार मिश्र द्वारा ए। आर। इन्टरप्राइजेज, 2811, गली गढ़ैया, कूचे चालान, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 से मुद्रित तथा फ्लैट नं। 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं। 7, महरौली, नई दिल्ली-110030 से प्रकाशित, संपादक-उपेन्द्र कुमार मिश्र

अनुक्रम

समकालीन अभिव्यक्ति

लेख

8. **व्यंग्य के प्रतिमान और हमारा समय**
   - सेवाराम त्रिपाठी

12. **स्वप्न : क्या, क्यों, कैसे**
   - प्रो. वंशीधर त्रिपाठी

16. **डॉ. कलीम आजिज़** - शायरी में नये लहजे की इजाद - डॉ. ज़ियाउर रहमान जाफ़री

ललित निबंध

18. सूखती नदी का शोक गीत - डॉ. श्यामसुंदर दुबे

21. सांस्कृतिक निरक्षर समाज में कविता - परिचय दास

कहानियाँ

26. सुनहरे बालों वाली लड़की - रंजना जायसवाल

29. गलत ट्रैक पर चले गये गालिबान - सुषमा मुनीन्द्र

35. प्रश्नचिह्न - चाँदनी समर

38. साढ़े-बारह - मो. इसरार

लघुकथा

42. उड़ान - अलका गुप्ता

संस्मरण

43. एल.एन. तोलस्तोय के अंतिम दिन
   - अनुवाद : रूपसिंह चन्देल

ग़ज़लें

49. वशिष्ठ अनूप

50. सत्यम भारती, अंजू केशव, नवीन माथुर पंचोली

51. डॉ. कविता विकास

कविताएँ

52. वीरेन्द्र नारायण झा

53. राजलक्ष्मी जायसवाल

54. डॉ. संतोष पटेल, संजय मृदुल

55. अमरेश सिंह भदौरिया

व्यंग्य

62. लेखक का आत्मकथ्य - सुभाष राय

65. टैग किए बिना चैन नहीं रे - अरुण अर्णव खरे

67. आत्म-मुग्धता का सुख - रन्दी सत्यनारायण राव

69. आ, अब लौट चलें - दलजीत कौर

स्थायी स्तंभ

05 एक दुनिया और भी है। 56. वक्रोक्ति

80 खोज-खबर

पोथी की परख

71. भारतीय भाषा एवं साहित्य : सामर्थ्य एवं प्रतिभाएँ

73. समय जल-सा

76. कठघोड़वा

78. फुज्जार

चुप्पी तोड़ो

सुन रहे हो न,
उस काँपती आवाज़ को
कितनी टीस, पीड़ा और बेबसी है उसमें
उस आवाज़ के लिए
समाज और सत्ता की प्राथमिकताओं में
कोई जगह नहीं है
हर कोई अनसुना कर देता है उसे
कमज़ोर की आवाज़
भला कौन सुनता है?

सुन रहे हो न,
उस दहाड़ को
जिसे सुनकर
थर-थर काँप रहा है विश्व
हिम्मत नहीं है किसी में
जो इसे कर दे अनसुना
यह गर्जना है महाशक्ति की

यही अंतर है
कमज़ोर और ताकतवर की औक़ात में
कमज़ोर का होता है दमन
की जाती है उसकी उपेक्षा
थोपी जाती हैं उस पर अपमानजनक शर्तें
उसे ताक़तवर की मर्ज़ी के अनुसार
काम करने के लिए किया जाता है बाध्य
कमज़ोर केवल सहानुभूति का पात्र होता है
उस पर लिखी जाती हैं कविताएँ
आयोजित होती हैं गोष्ठियाँ
वह बनता है विमर्श का विषय
उसे प्रस्तुत किया जाता है
साहित्य की आत्मा के रूप में
उसके लिए
कलेजा निकालकर रख दिया जाता है
राजनीतिक पार्टियों के घोषणापत्र में

वह इन सबके लिए होता है कच्चा माल
जिससे बनाया जा सकता है
मनोवांछित उत्पाद
भाषा की शिष्टता बनाए रखते हुए
कह दूँ
व्यापारी हैं सब ताक़त वाले
जो जितना अधिक ताकतवर
वह उतना ही बड़ा व्यापारी
इन्हें मतलब सिर्फ़ अपने लाभ से है
शक्ति के व्यापार की क़ीमत
चुकानी पड़ती है
कमज़ोर लोगों को ही

चुप्पी तोड़ो

अगर बेबस और कमज़ोर लोग न हों
तो अमीर किस पर दिखाएगा
अपनी अमीरी
ताक़तवर किस पर दिखाएगा
अपनी ताक़त
शोषक किसका करेगा शोषण
कौन घंटों लाइन में लगकर
करेगा मतदान
कौन बनेगा रैलियों और सभाओं की भीड़
कौन उठाएगा झंडे
कौन लगाएगा नारे

ताक़तवर करता है भय का निर्यात
आतंकवाद है उसका हथियार
अपनी ज़रूरत के मुताबिक़
आतंकी पैदा करना
और आतंकवाद को खाद-पानी देना
उसकी कूटनीति है
राजनीतिक हथियार है यह उसका
मतलब निकल जाने पर
वह झाड़ लेता है इससे पल्ला
और अगर
वह ख़ुद हो गया इसका शिकार
तो फिर तिलमिलाकर
अपनी ही नाजायज़ औलाद का
कर देता है ख़ात्मा

जो रखता है सामर्थ्य
पूरी दुनिया को समाप्त कर देने का
अगर वह चाह ले
तो क्या समाप्त नहीं कर सकता
आतंकवाद को?
लेकिन उसे
आतंकवाद की निंदा भी करनी है
और अपने कूटनीतिक हथियार के रूप में
उसका प्रयोग भी करना है

'गुड टेररिज़्म' और 'बैड टेररिज़्म' का
सिद्धांत प्रतिपादित कर
आतंकवाद को
संजीवनी देने वाली शक्तियाँ
गुनाहगार हैं
लाखों बेगुनाहों के क़त्ल का
जब भी
आतंकवाद के
समूल नाश की बात होती है
तो उसे बचाने के लिए
ढाल बन जाता हैं ये शक्तियाँ

बेमानी है यह सोचना
कि हमारे लिए, हमारी तरफ़ से
कोई लड़ेगा आतंकवाद के विरुद्ध
ज़्यादा से ज़्यादा कोई दे सकता है
नैतिक समर्थन
या साध सकता है चुप्पी
लड़ाई तो लड़नी पड़ेगी हरेक को
अपने बूते ही

बड़ा लक्ष्य
बिना चुनौतियों के हासिल नहीं होता
उन्हीं चुनौतियों में से एक चुनौती है
आतंकवाद
यह हमारी कमजोरियों को ही
बनाना चाहता है अपना हथियार
जाति और धर्म में बाँटकर
हमारी समेकित शक्ति को
करना चाहता है खंड-खंड
आपस में लड़ाकर
फैलाना चाहता है आंतरिक अशांति
उसे भरोसा है
हमारे अंदर मौजूद हैं कुछ ऐसी ताकतें
जो उसके काम को करेंगी आसान
जुटाएँगी वैचारिक समर्थन
उसके लिए
बारूदी फसल के लिए
तैयार करेंगी ज़मीन

लेकिन, जब देश का लक्ष्य
बन जाता है जन-जन का लक्ष्य
हर नागरिक
उसके प्रति कर देता है
अपने को समर्पित
तब कोई भी साज़िश
कोई भी चुनौती
अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पाती
नागरिकों का एकजुट संकल्प
एकजुट समर्पण
सबसे बड़ी शक्ति होती है
किसी देश के लिए

कमज़ोर
चाहे व्यक्ति हो या देश
उसकी कोई नहीं सुनता।

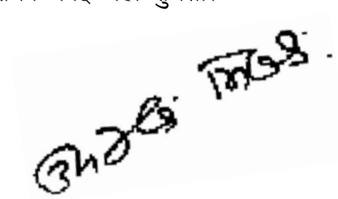

(उपेन्द्र कुमार मिश्र)

पाठक केवल पाठक नहीं होता

★ उपेन्द्र कुमार मिश्र

संपादक

साहित्य में पाठक की अहं भूमिका को स्वीकार तो किया जाता है, लेकिन रचना के बारे में उसकी प्रतिक्रिया को आलोचना की परिधि में नहीं रखा जाता। उसे या तो अनसुना कर दिया जाता है, या फिर व्यक्तिगत राय कहकर उसकी महत्ता को नकार दिया जाता है। आलोचना के अपने सिद्धांत और मानदंड होते हैं। उसी प्रतिक्रिया को आलोचना की परिधि में रखा जाता है, जो इस सिद्धांत और मानदंड पर आधारित हो। विचारधारा के आधार पर आलोचना के सिद्धांत और मानदंड भी अलग-अलग होते हैं। आलोचक के लिए रचना से अधिक महत्त्वपूर्ण विचारधारा होती है। जिस रचना को पढ़कर पाठक लहालोट हो जाता है, उसी रचना को अपनी विचारधारा के अनुरूप न होने पर आलोचक उसकी बखिया उधेड़ देता है। ठीक इसके विपरीत, पाठक को पसंद न आने वाली रचना को अपनी विचारधारा के अनुरूप पाकर आलोचक उसकी महानता के क़सीदे पढ़ने लगता है। प्राय: हर महान लेखक के बारे में यह कहा जाता है कि अगर आज इन्हें महान माना जाता है तो इस आलोचक के कारण, नहीं तो इन्हें कौन जानता था? आलोचक जिन्हें महान घोषित कर देता है, साहित्य के क्षेत्र में और अकादमिक स्तर पर उसे महान मान लिया जाता है। ऐसे कितने नाम हैं, जिन्हें आलोचक की कृपा के कारण नहीं, पाठक की पसंद के कारण महान माना गया हो? लेखक भी पाठक की प्रतिक्रिया का उल्लेख तभी करना चाहता है, जब उसमें उसकी रचना की तारीफ़ की गई हो। नकारात्मक टिप्पणी करके पाठक लेखक के निशाने पर आ जाता है। कभी-कभी तो उसकी बौद्धिक क्षमता पर ही प्रश्न उठा दिया जाता है। अपनी रचना की प्रशंसा सुनने को आतुर रचनाकार नहीं चाहता कि कोई उसकी रचना पर प्रतिकूल टिप्पणी करे, चाहे वह मान्यताप्राप्त आलोचक ही क्यों न हो।

सबका बौद्धिक स्तर एक जैसा हो, यह संभव नहीं। प्रतिक्रिया की सकारात्मकता या नकारात्मकता के आधार पर किसी की बौद्धिकता का आकलन करना, स्वयं आकलन करने वाले की बौद्धिकता को संदेह के घेरे में ला देता है। वही पाठक यदि तारीफ़ करे तो बौद्धिक हो गया और यदि प्रतिकूल टिप्पणी कर दे तो अबौद्धिक हो गया, यह कौन-सा मानदंड है? रचना पाठक के लिए ही रची जाती है। हर लेखक यह चाहता है कि उसके लिखे को अधिक से अधिक

लोग पढ़ें।

प्रकाशन के उपरांत रचना लेखक के नियंत्रण से मुक्त हो जाती है। पाठक उसे किस रूप में लेता है, यह उसकी मर्जी। उसके लोकतांत्रिक अधिकार का सम्मान होना चाहिए। पाठक को इसके लिए विवश नहीं किया जा सकता कि आप वही समझें, जो मैं कहना चाहता हूँ, आपने जो समझा है, वह आधा-अधूरा है या इसका वह आशय नहीं है। एक समर्थ लेखक वही हो सकता है, जो बात वह जिस रूप में और जितना कहता है, वह उस रूप में और उतना पाठकों तक पहुँच जाए। भाषा का उद्देश्य भी यही है। अगर नहीं पहुँच पाती तो कमी लेखक की है, पाठक की नहीं। उसे अपनी भाषा, शैली, अभिव्यक्ति कौशल और संप्रेषण क्षमता में सुधार की ओर ध्यान देना चाहिए।

लोकप्रिय होने के लिए लोक की स्वीकृति आवश्यक है। इसके लिए अपने बारे में लोक की धारणा, लोक की प्रतिक्रिया को जानना और उसे महत्त्व देना ज़रूरी है। उसी से पता चलता है कि लोक आपको कितना जानता है और किस रूप में कितना पहचानता है। ऐसा संभव नहीं कि आम पाठक की स्वीकृति के बिना केवल साहित्यिक आलोचकों की कृपा से कोई लोकप्रिय लेखक बन जाए। वह साहित्य के लिए तो महत्त्वपूर्ण हो सकता है, लोक के लिए नहीं। आम पाठक साहित्यिक आलोचकों के मत या धारणा के अनुसार किसी को पसंद या नापसंद नहीं करता। कोई रचना उसे कितना प्रभावित कर पाती है, इस आधार पर वह उसे पसंद या नापसंद करता है। ऐसा कभी नहीं होता कि जो रचना उसे पसंद न आई हो, उसकी तारीफ़ वह केवल इसलिए करने लगे कि यह किसी बड़े लेखक की रचना है या इस लेखक को किसी आलोचक ने महान घोषित कर रखा है। अब यह लेखक के ऊपर निर्भर है कि वह किसी आलोचक द्वारा महानता का प्रमाणपत्र प्राप्त कर अपने महान होने का दंभ पाल लेता है या लोक-स्वीकृति की कसौटी पर खरा उतरने का साहस दिखाता है। दंभ पालकर इस कसौटी पर खरा नहीं उतरा जा सकता। लोक-स्वीकृति के लिए लोक द्वारा कोई प्रमाणपत्र जारी नहीं किया जाता। कभी-कभी तो लेखक को अपने जीवनकाल में इसका पता भी नहीं चल पाता।

प्राय: आम पाठक को साहित्यिक बिरादरी से बाहर माना जाता है, चाहे वह कितना भी पढ़ा-लिखा क्यों न हो! बहुत से ऐसे पाठक होते हैं, जो किसी साहित्यकार से अधिक साहित्य के मर्म को जानते और समझते हैं। आजकल के साहित्यकार तो प्राय: दूसरे का लिखा पढ़ते ही नहीं। एक विचारधारा वाले दूसरी विचारधारा का लिखा नहीं पढ़ते। वे तो उन्हें साहित्यकार मानने में भी हिचकते हैं। लेकिन आम पाठक, जो अभी विचारधारा के रोग से दूर है, उसे जो अच्छा लगता है, पढ़ता है और खूब पढ़ता है। कुछ को तो पढ़ने का नशा होता है। बिना पढ़े चैन नहीं पड़ता। ऐसे लोग संख्या में बहुत कम हैं, लेकिन किसी भी काल में साहित्यिक पाठकों की संख्या बहुत अधिक नहीं रही है। जब यह प्रश्न उठाया जाता है कि आज पाठक हैं कहाँ? कितने हैं? तब इस पर भी विचार करना चाहिए कि आप किसके लिए लिख रहे हैं - आलोचक के लिए, पाठक के लिए या अपने लिए? अगर आलोचक के लिए लिख रहे हैं तो आज आलोचक कहाँ हैं? कितने हैं? क्या आप उनके मानदंडों के अनुसार लिख रहे हैं? हर आलोचक के अपने-अपने मानदंड होते हैं, जो उनकी औरों से अलग पहचान बनाते हैं। फिर आप पाठक की परवाह मत कीजिए, लिखिए आलोचक के लिए। निष्ठा और समर्पण में दुविधा रचना को प्राणहीन बना देती है। यदि स्वांत: सुखाय के लिए लिख रहे हैं तो फिर शिक़ायत किस बात की? लिखिए और प्रसन्न रहिए। अगर पाठक के लिए लिख रहे हैं तो कुछ पाठक की भी लिखिए। यदि पाठक को पढ़ने पर कुछ मिलेगा नहीं, तो फिर वह क्यों पढ़ेगा? आप ज़बरदस्ती उससे जयकारा नहीं लगवा सकते। वह कोई आपके वैचारिक गैंग का पालतू सदस्य नहीं है। उसे जो पढ़ना होगा पढ़ेगा, जब पढ़ना होगा तब पढ़ेगा। पढ़ करके अगर कोई प्रतिक्रिया देना चाहेगा तो देगा, चुप रहना चाहेगा तो चुप रहेगा। यह उसका लोकतांत्रिक अधिकार है। जो दिल में जगह बना ले, उसका ज़ुबान पर दिखाई देना आवश्यक नहीं होता। मौन स्वीकृति, मुखर स्वीकृति से अधिक विश्वसनीय होती है। उसमें छल नहीं होता। सार्वजनिक हो चुकी कोई रचना कहाँ-कहाँ पहुँची, किन-किन के द्वारा

पढ़ी गई, इसे कोई नहीं जान सकता। उसके प्रभाव का भी तात्कालिक आकलन नहीं किया जा सकता। रचना को पढ़कर पाठक के भीतर लेखक के बारे में एक धारणा ज़रूर निर्मित होती है, लेकिन वह प्रायः उसे व्यक्त नहीं करता, जब तक ऐसा करने का कोई प्रभावी कारण मौजूद न हो। अव्यक्त स्वीकृति का दायरा व्यक्त स्वीकृति की तुलना में बहुत व्यापक होता है। लेकिन यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि यह स्वीकृति रचना आधारित होती है। पाठक लेखक को नहीं जानता, उसकी रचना को जानता है। जब रचना उसे अच्छी लगती है, तब वह यह जानने को उत्सुक होता है कि उसे लिखा किसने है? हम इतनी रचनाएँ पढ़ते हैं, क्या सबके लेखक का नाम हमें याद रहता है? लेकिन जो रचना हमारे मन को भा जाती है, उसके लेखक का नाम प्रायः हम नहीं भूलते। सामान्य पाठक आलोचक की तरह पूर्वाग्रही नहीं होता।

लेकिन लेखक मुखर स्वीकृति का भूखा होता है। केवल इसलिए नहीं कि उसे यह पता चल सके कि कितने लोग उसे पसंद करते हैं, बल्कि इसलिए भी कि वह दूसरे लोगों को यह बता सके कि देख लो हमें चाहने वाले कितने हैं, हमें ऐसा-वैसा मत समझ लेना। जब किसी अनजान पाठक का फ़ोन या पत्र उसकी रचना की तारीफ़ में उसके पास आता है, तो उसकी ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहता। उससे बड़ा पुरस्कार उसके लिए कुछ और नहीं हो सकता। उस सम्मान की तुलना किसी से नहीं की जा सकती। उस तारीफ़ में न तो जान-पहचान का कोई योगदान होता और न तो किसी की सिफ़ारिश का, वह केवल रचना के प्रभाव का प्रतिफल होती है। जब हम पाठक के लिए और पाठक का लिखते हैं तो उसके लिए कई बार विचारधारा के लोभ का परित्याग अपेक्षित होता है, ताकि हम किसी अतिरेक से बच सकें और रचना में स्वाभाविक ईमानदारी बनी रहे। निष्पक्षता केवल रचना को ही नहीं, बल्कि लेखक को भी आदर दिलाती है। रचना में पाठक को बहा ले जाने की क्षमता होनी चाहिए। रचना में डूबे बिना न तो हम रचना का आनंद ले सकते हैं और न तो उसके साथ न्याय कर सकते हैं। हर पाठक की बौद्धिक क्षमता और भाषा-ज्ञान में भिन्नता होती है, इसलिए लेखन इतना सहज और सरल होना चाहिए कि उसे सब पढ़ सकें और पढ़कर समझ सकें। पांडित्य प्रदर्शन सामान्य पाठक को रचना से दूर कर देता है। हम जो कहना चाह रहे हैं, उसे अगर उस रूप में पाठक तक नहीं पहुँचा पा रहे हैं, तो फिर हम किसके लिए और क्यों लिख रहे हैं? बिना प्रवाह के न तो नदी किसी को बहा सकती है, न तो रचना। इस प्रवाह के लिए ही लेखक जीवनभर साधना करता रहता है।

पाठक केवल पाठक नहीं होता, वह रचना का मूल्यांकनकर्ता भी होता है। वह रचना के अंदर भी होता है और रचना के बाहर भी। रचना के अंदर वह संवेदना और अनुभूति के रूप में उपस्थित होता है तो रचना के बाहर एक पर्यवेक्षक के रूप में। रचना के अंदर की संवेदना और अनुभूति से जुड़ जाने को ही रचना में डूब जाना कहा जाता है। रचना में पाठक की अनुभूति और संवेदना जितनी सघनता से उपस्थित होगी, वह पाठक को उतनी ही जल्दी और आसानी से अपने में डुबो लेगी। रचना को रचते समय रचनाकार केवल लेखक की भूमिका में नहीं होता बल्कि, पाठक की इस अनुभूति और संवेदना का संवाहक भी होता है। इसीलिए लेखक को अपनी रचना का पहला पाठक कहा जाता है। वह रचने और पढ़ने का काम साथ-साथ करता है। जब तक वह संतुष्ट नहीं हो जाता कि रचना में पाठक की अनुभूति और संवेदना दर्ज़ हो गई है, तब तक वह उसमें फेरबदल करता रहता है। रचना रचते समय लेखक में पाठक जितना अधिक समाहित होगा, वह रचना उतनी ही अधिक स्वाभाविक, संप्रेषणीय और प्रभाव छोड़ने वाली होगी। इसीलिए कहा जाता है लेखक समाज का प्रतिनिधित्व करता है। वह लोकमन का पारखी होता है। 'स्वांतः सुखाय' के लिए भी लेखक को पाठक बनना ही पड़ता है।

लेखक को साहित्यिक बिरादरी से बाहर रखकर हम साहित्य का भला नहीं कर सकते। वह न केवल रचना प्रक्रिया से जुड़ा रहता है, बल्कि वह उसकी सार्थकता की कसौटी भी होता है। सच्चे अर्थों में वही, ख़ेमेबाजी और विचारधारा के दुराग्रहों से मुक्त, सच्चा आलोचक भी होता है। साहित्य पाठक से जितना जुड़ाव रखेगा, पाठक भी साहित्य से उतना ही अधिक जुड़ सकेगा।

❋❋

व्यंग्य के प्रतिमान और हमारा समय

* सेवाराम त्रिपाठी

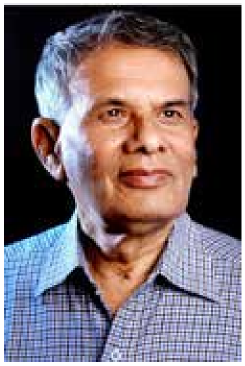

जन्म :
22 जुलाई 1951, सतना (म.प्र.)
सृजन :
अंधेरे के खिलाफ, खुशबू बाँटती हवा (कविता संग्रह), मुक्तिबोध: सर्जक और विचारक (आलोचना), हाँ हम राजनीति नहीं कर रहे (व्यंग्य संग्रह) तथा अन्य पुस्तकें, प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।
सम्मान :
मधयप्रदेश साहित्य अकादमी का आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी पुरस्कार

सम्पर्क :
रजनीगंधा-06, शिल्पी उपवन, अनंतपुर, रीवा
(म. प्र.)-486002
मो. 7987921206

समय कभी ठहरता नहीं । वह हर हाल में गलतियों की काट-छाँट करता है। हाँ, निर्धारण प्रक्रिया उसकी होती है । वह अपने ढंग से काम करता है । एक बघेली कवि की पंक्तियाँ पढ़ें -"समय केरि बलिहारी देखा/संगै मूस बिलारी देखा/" यानी जिसको जहाँ नहीं होना चाहिए, वो वहीं बार-बार पसर-पसर जाता है। इसे हम विरुद्धों का सामंजस्य भी कह सकते हैं। विरुद्धों की हवा में न जानें कितने क्षत्र तने हैं और तनतना रहे हैं। इसी में गिरना है और इसी में उठना है। आज के दौर में विपरीत आचरण, व्यवहार और मनोविज्ञान के बावजूद, हम अपने स्वार्थो के वशीभूत होकर वहीं बार-बार बिछते भी चले जाते हैं। वहीं अपनी ऐसी-तैसी कराते रहते हैं।

स्वार्थो में बड़े-बड़े राजे महाराजे भी बिछ चुके हैं, जिनके बड़े गुमान हुआ करते थे । इस स्वार्थ सिद्धि संधान और प्राप्ति प्रक्रिया से कौन बचा है? बिछने-बिछाने के अंकरा-कुहर के घटाटोप में शताब्दी गुज़र रही है। हमारी शताब्दी तानाशाही मनोविज्ञान का सरपट पाठ पढ़ रही है और पढ़ा भी रही है । न संविधान बचा और न संवैधानिक संस्थाएँ । धीरे-धीरे संसद झूठ बोलने का अखवाड़ा बनती जा रही है । कुछ तो जीवन के टकसालों से ठोस मुहावरे प्रकट करने की कोशिश करते हैं । मुहावरे ऐसे ही नहीं बन जाया करते हैं । वे जीवन की जद्दोजहद और ठोस वास्तविकताओं से ही मुठभेड़ करते हुए ही बनते हैं । मुहावरे बनना हँसी-खेल नहीं हैं । वे जीवन के विराट अनुभव क्षेत्र से ही निकलते हैं । आजकल हर जगह कबड्डी-कबड्डी खेल चल रहा है और सामाजिक संघर्षों के रूपाकारों में ढालने के प्रयत्न जारी हैं । लगे रहो उस्तादो, तीसमारखांओं । देश ने गिरावट कर्नाटक, मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में पूर्व में देखी थी । हम गिरावट देखने में सिद्धहस्त होते जा रहे हैं । फिलहाल बिहार विधानसभा का नवीनतम खेल भी देखा अत्यंत निर्लज्जता के साथ और अभी भी उसकी गिरावट को पूरा देश मर्माहत होकर देख रहा है । कोई कितनी बार बेशर्मी से पाला बदल सकता है। पहले भी इस प्रकार के हादसे देश देख चुका है, अब वो रिकॉर्डधारी हो चुका है। कोई इधर से उधर, कोई उधर से इधर । यह इधरा-उधरी की रासलीला है। कोई कितनी बार गिर सकता है ? इसकी कोई लिमिट नहीं रह गई है । सोशल मीडिया में दो पंक्तियां पढ़कर इसका पक्का एहसास हो गया । जैसे "अभी-अभी तो धूप थी, अभी-अभी है छाँव /मौसम भी चलने लगा, नीतिशियाना दाँव /" व्यंग्य था, व्यंग्य है और आगे भी उसका अस्तित्व बना रहेगा । व्यंग्य का कोई बाल बाँका नहीं कर सकता । व्यंग्य लेखन की हस्ती को मिटाने की किसी में

कूबत नहीं है । उसके रास्ते पर चलना केवल समय की लीला है । और क्या ? न जाने कितने-कितने लीलाधारी वहीं व्यंग्य के मुकुट पूजन में जुटे हैं । सब अपने-अपने व्यंग्य लेखन हाँक रहे हैं। अपनी-अपनी परिभाषाओं की पिपिहरी बजा रहे हैं और न जाने क्या गढ़ रहे हैं। उन्हें व्यंग्य के मूल्यों और विश्वासों से क्या लेना-देना ? उसकी वास्तविकता और उसूलों से क्या काम? धुनाई जारी है। धुनिया धुन रहे हैं ? धुनाई लीला की अघोर भैरव साधना भी जारी है । जैसे जनतंत्र की जगह राजतंत्र का सिंहासन सजा हुआ है। जनतंत्र की उखाड़ परंपरा के समानांतर व्यंग्य लेखन की दिया बत्ती की जा रही है ।

पूर्व में संविधान बना, लागू हुआ । बीच-बीच में उसका रूप सजता रहा । फिलहाल उसका कुछ अस्तित्व है लेकिन आगे उसका क्या हश्र होगा ? किसी को नहीं मालूम? उसके रूप बहुत बदल जाएंगे । वह मनुस्मृति की तर्ज़ पर नाचेगा या गीता का रूप धारण कर सकता है यह तो वक्त ही बताएगा। इसी तरह व्यंग्य के भी रूप बदल जाएँगे । देखिए उसके उपयोग करने में लगे लोग कितने खुश हैं। आखिर इसमें हर्ज ही क्या है? समय अनेक चीज़ों के निर्वाह के संदर्भ और अर्थ बदल देता है और उनके रूप भी परिवर्तित हो जाया करते हैं । इसके लिए हम पश्चाताप करें या खुशी मनाएं यह एक अलग तरह का प्रश्न है । रहना यहीं हैं और जीना भी यहीं हैं । यहीं काँखना-कराहना हैं और यहीं कल्हारना हैं । यहीं धक्का-मुक्की भी करनी है ।

मुझे लगता है कि व्यंग्य तो हमारे समूचे जीवन में है, आचरण-व्यवहार में है, लेकिन सिद्धांतों की दुनिया में वह बड़े-बड़े धक्के खा रहा है। उसकी असलियत के स्थान पर व्यंग्य की रगड़ाई जारी है । यह अलग बात है । गांव में जिस तरह व्यंग्य का धड़ल्ले से प्रयोग होता है वह अप्रतिम है । व्यंग्य लिखने वालों को उन हालातों को देखना भी चाहिए । जैसे तुम्हारा मुंह नसान (यानी ख़राब हुए) माठा या छाछ जैसे हो गया है । अथवा तुम्हारी सूरत नसान छाता जैसे हो गई है । व्यंग्य अब ठीक-ठाक अपनी स्पिरिट को शायद देखे जाने के लिए तरसता रहता है। व्यंग्य को हम भाषा की पीट-पाट में देखना चाहते हैं, जबकि उसका वास या निवास कंटेंट में होता है । भाषा और शिल्प शैली तो मददगार हैं । इस दौर में भाषा के पेटेंट के बल पर व्यंग्य लेखन को दौड़ाया जा रहा है । हाँ, भाषा उसकी मदद करती है । यहाँ लोग उसी को लेकर उड़ रहे हैं । इधर भाषा के तर्कशास्त्र में ही व्यंग्य को घेर लिया गया है । उसकी हनन- हनाई जारी है। व्यंग्य के शास्त्रीय प्रतिमान होते हैं और दूसरे अशास्त्रीय या लोक के प्रतिमान होते हैं । व्यंग्य गांवों से भागकर शहरों, महानगरों में क़दमताल कर रहा है । लिखने वाले उसे अपने खूँटे में बाँधकर लगातार धुनाई कर रहे हैं । दुर्भाग्य से व्यंग्य लेखन को आरती उतारने के हिस्से में ला दिया गया है । व्यंग्य लेखन और आरती । प्रशंसा के पोथी-पोथन्नें खुल गए हैं । व्यंग्य लेखन बेचारगी की स्थिति में छटपटा रहा है। व्यंग्य प्रशंसा की चौखट पर मत्था टेक रहा है ।

व्यंग्य के चंदोवा तले अब हर तरह के विचार समेटे जा रहे हैं । बहुतों को सोच-विचार से ही चिढ़ या नाराज़गी है । इसमें मनुष्य विरोधी वितान भी है और मनुष्य की पक्षधरता, प्रतिबद्धता और जनजीवन के सरोकारों का हौसला भी । अब इसमें सत्ता के रहनुमा भी हैं और सत्ता के विरोधी भी हैं । व्यंग्य अब खुला हुआ है खेल है कुछ लोगों तक, बाकी के लिए बंद दरवाज़ा है । इस दौर में व्यंग्य की प्राथमिकताएँ काफ़ी बदल चुकी हैं । कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि क्या व्यंग्य के लिए, व्यंग्य के सरोकारों के लिए या प्रतिबद्धता के लिए इसमें कोई जगह है या इसमें उसके लिए

व्यंग्य के शास्त्रीय प्रतिमान होते हैं और दूसरे अशास्त्रीय या लोक के प्रतिमान होते हैं । व्यंग्य गांवों से भागकर शहरों, महानगरों में क़दमताल कर रहा है । लिखने वाले उसे अपने खूँटे में बाँधकर लगातार धुनाई कर रहे हैं । दुर्भाग्य से व्यंग्य लेखन को आरती उतारने के हिस्से में ला दिया गया है । व्यंग्य लेखन और आरती । प्रशंसा के पोथी-पोथन्नें खुल गए हैं । व्यंग्य लेखन बेचारगी की स्थिति में छटपटा रहा है। व्यंग्य प्रशंसा की चौखट पर मत्था टेक रहा है ।

कोई संजीदा भाव भी है ? या केवल लिखंत- पढंत भर है ? समकालीनता को इधर कई तरह से व्याख्यायित किया जा रहा है? इसे आप चाहे जितने और जिस समय से पकड़ सकते हैं । यह आपकी सुविधा का मामला है । समकालीनता वाल्मीकि, भवभूति से लेकर आज के जटिल समय तक जाती है । मेरी समझ में यह समय विद्रूपताओं, विरोधाभासों और अंतरविरोधों से पूरी तरह से युक्त है ।

इधर व्यंग्य का हाल बेहाल हो गया लगता है । अति उत्साह में जिस किसी भी रचना में दाएँ-बाएँ उस पर व्यंग्य शब्द लिख दिया जाता है या चिपका दिया जाता है अर्थात् व्यंग्य । आपको हर हाल में मानना पड़ेगा कि वह व्यंग्य ही है। उसमें कोई हुज्जत नहीं करनी चाहिए। कोई ज़रूरी नहीं कि उसमें व्यंग्य हो ही । वह हास्य, हरक्की या विनोद हो सकता है। वह टेपा-टेपी भी हो सकता है। कोई लिखने वाले का मुँह नहीं पकड़ सकता। जब उसे कोई व्यंग्य से घेर देता है या छेंक दिया जाता है तो वह व्यंग्य की कोटि में हो ही जाता है। व्यंग्य लेखन का हाल प्रजातंत्र की तरह विकसित हो रहा है। वह शुद्ध व्यंग्य लेखन की वर्कशॉप हो जाया करती है और असली व्यंग्य को पीट-पाटकर खपच्चियों में धर दिया जाता है । अब तो व्यंग्य के बड़े-बड़े खोमचे लगाए जाते हैं। मसलन ले लो व्यंग्य । बढ़िया और लाजवाब व्यंग्य है । लजीज़ व्यंग्य है। टका सेर व्यंग्य । अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा स्टाइल में व्यंग्य । उसी को लेकर व्यंग्य की दुनिया में यात्रा करो । इधर दो प्रकार के व्यंग्य घल रहे हैं-एक दृष्टिवान व्यंग्य और दूसरा दृष्टिहीन व्यंग्य । फिलहाल मंच में धृतराष्ट्र की दृष्टिविहीन संतानों के मौज करने का वक्त है, तो दूसरी ओर दृष्टिवान पांडवों की ऐसी-तैसी कराने का समय है। मजाल है कि कोई सुई की नोक बराबर जगह दे दे । वे व्यंग्य लीला का भुगतमान भोग रहे हैं । दुर्योधन की जय जयकार हो रही है । वह दिन-रात तन रहा है और उसकी छाती का अनुपात बढ़ रहा है ।

मुझे यह भी लगता है हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और हैं । व्यंग्य में बढ़ रही ठकुरसुहाती का कोटा ज्यादा है, वास्तविकताएँ कम । अब तो तारीफों के बुलबुले भी फूट रहे हैं और जलवे भी हमारे सामने आ चुके हैं । व्यंग्य अब एक फैक्ट्री के रूप में विकसित हो रहा है । इस कठिन समय में कुछ व्यंग्यकारों में प्रतिबद्धता का इलाका अभी भी शेष है और अच्छा खासा पुख़्ता भी है। एक प्रतिबद्धता के नाम पर बाहर का छद्मवेश भी बहुत बढ़ गया है। व्यंग्य में हमें खोजना क्या चाहिए और इसे खोजने से भी क्या लाभ? जैसे इस देश में ईमानदारी खोजना एक तरह से धुंए में लट्ठ मारना है। उसी तरह किस अंश तक आदर्श बचे हैं? हम अनादर्शो की विकट और अंतहीन भीड़ में हैं। क्या अनादर्शो की विकट परिस्थितियों में उन्हें किसी भी तरह खोजा जा सकता है? वैसे भी व्यंग्य एक कठिन कला है और बेहद ज़रूरी और गंभीर काम भी। दुखद पक्ष है कि व्यंग्य का कुटीर उद्योग भी चल रहा है और इस दौर में व्यंग्य एक बहुत बड़ा मीना बाज़ार भी बन चुका है या बना दिया गया है। व्यंग्य लेखन अब बनने-बनाने का खेल भी होता जा रहा है।

बिना खतरा उठाए भी व्यंग्य की उठक-बैठक चल रही है । वे पुरस्कार पीटने के इलाके में आ चुके हैं । अच्छे व्यंग्य की माला जपते रहो और प्रशंसा के पुल बनाते रहो। कहो कुछ और करो कुछ। व्यंग्य की लंबी छलाँग लगाई जा रही है। कहावत है- 'दांत घिसे से काम लकड़िया काह्यो की।' अब तो व्यंग्य का माला जाप चल रहा है। सिद्ध हो गया है कि बिना नैतिकता के भी व्यंग्य लिखे जा सकते हैं और बिना ज़मीर के,

बिना खतरा उठाए भी व्यंग्य की उठक-बैठक चल रही है। वे पुरस्कार पीटने के इलाके में आ चुके हैं । अच्छे व्यंग्य की माला जपते रहो और प्रशंसा के पुल बनाते रहो। कहो कुछ और करो कुछ। व्यंग्य की लंबी छलाँग लगाई जा रही है। कहावत है-'दांत घिसे से काम लकड़िया काह्यो की।' अब तो व्यंग्य का माला जाप चल रहा है। सिद्ध हो गया है कि बिना नैतिकता के भी व्यंग्य लिखे जा सकते हैं और बिना ज़मीर के, बिना आत्मालोचन के, बिना दृष्टि के भी व्यंग्य लेखन हो सकता है। अब इनमें भी वह उबलने लगता है।

बिना आत्मालोचन के, बिना दृष्टि के भी व्यंग्य लेखन हो सकता है। अब इनमें भी वह उबलने लगता हैं। भए प्रगट कृपाला दीन दयाला कौशल्या हितकारी की तरह । अब तो हाल यह है कि व्यंग्य लेखन कुंभकर्णी नींद में आराम से सो रहा है और उसके उठाने के लिए ढोल-ढमाके बजा बजाकर जगाया जा रहा है। लेकिन वह बैठान पकड़ गया है। उसे मुश्किल से ही उठाया जा सकेगा। लगे रहो उस्ताद ।

यह दौर एक विशेष प्रकार का शर्मनाक दौर है । जिसका संबंध मात्र राजनीति भर से नहीं है बल्कि लेखन से और व्यंग्य लेखन से भी है । अब तो शर्म को भी शर्म आ रही होगी । हम शर्म की बात पर तालियाँ पीट रहे हैं । इसलिए यह सब कुछ अली गोल के मैदान में खुल्लम-खुल्ला हो रहा है और हम हें-है कर रहे हैं । व्यंग्य का प्रमोशन हो गया है और वह लगातार हें हें-हें-हें कर रहा है ।

वास्तविकता यह है कि व्यंग्य समय की जटिलताओं, कुटिलताओं, कुचक्रों, हदबंदियों और हर तरह की जकड़बंदी को खोलने में सक्षम है। हम तारीफों की किश्ती पर सवार होकर व्यंग्य साधने पर तुले हैं और तारीफ भी ऊँचे पहुँचने का एक मनभावन संसार है । कुछ व्यंग्यकारों को छोड़कर बाकी के द्वारा समय के जटिल सवालों को अनदेखा किया जा रहा है । हमारा समकालीन व्यंग्य हलकी-फुलकी चीज़ों में ज्यादा भिड़ा रहता है । वैसे भी कोई साहसहीन व्यंग्य नहीं लिख सकता? आत्ममुग्ध भी व्यंग्य को नहीं निभा सकता । बिना बेचैनी के व्यंग्य शायद किसी तरह संभव ही नहीं है । व्यंग्य के लिए ज़रूरी है नैतिक मूल्य और नैतिक ऊर्जा। वैसे बेगैरत और बेईमान भी व्यंग्य नहीं लिख सकते, लेकिन नाटक तो कर ही सकते हैं । अब तो व्यंग्य का बहुत बड़ा बाज़ार हो गया है । व्यंग्य बिना विवेक की धार के संभव नहीं है । विवेक को अगस्त्य मुनि की तरह एक चुल्लू पानी की तरह पी लिया है और समूचे समुद्र को खलास कर दिया है । व्यंग्य में हास्य का चटपटापन लाकर । जैसा कि कहा भी जा रहा है, व्यंग्य का कुटीर उद्योग भी चल रहा है और बहुत बड़ी फैक्ट्री का महिमा मंडन भी । बाज़ार बन रही दुनिया की चकाचौंध में हम समय के जटिल सवालों को अनदेखा कर रहे हैं । यही नहीं, राजनैतिक और कुछ सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन चीज़ों पर आ रहे संकट को भी अनुभव कर रहे हैं । घरेलू जीवन और सामाजिक जीवन पर जो खतरे मंडरा रहे हैं, कोशिश करें कि ऐसा संभव नहीं हो पाए । इस पर हमें गंभीरता से विचार करने की ज़रूरत है ।

❋❋

सर्जकों तथा पाठकों से

- 'समकालीन अभिव्यक्ति' एक साहित्यिक आन्दोलन है। इसमें आपकी सक्रिय भागीदारी निवेदित एवं अपेक्षित है।
- पत्रिका में प्रकाशनार्थ रचनाओं का स्वागत है। कथा, व्यंग्य, लेख, गीत, ग़ज़ल, कविता, रिपोर्ताज आदि किसी भी विधा में रचना भेजें।
- रचना कागज के एक तरफ पर्याप्त हाशिया छोड़कर सुस्पष्ट अक्षरों में लिखित या टंकित होनी चाहिए।
- अस्वीकृत रचनाएं नष्ट कर दी जाती हैं, अतः उनकी एक प्रति अपने पास सुरक्षित रखें।
- स्वीकृत रचनाओं की सूचना सामान्यतः फोन पर एक माह के अन्दर दे दी जाएगी।
- रचना के अन्त में यह प्रमाणपत्र अवश्य दें कि रचना मौलिक एवं अप्रकाशित है।
- फोटो/छाया चित्र के पीछे नाम अवश्य लिखें।
- रचनाएं ई-मेल से भी स्वीकार की जाती हैं। ई-मेल से रचनाएँ केवल कृतिदेव या युनिकोड/मंगल में भेजें।
- समकालीन अभिव्यक्ति में अन्यत्र प्रकाशित रचनाएँ स्वीकार नहीं की जाती हैं। जब तक रचना पर निर्णय नहीं हो जाता, तब तक उसे प्रकाशनार्थ अन्यत्र न भेजें।
- प्रकाशित रचनाओं पर किसी प्रकार के मानदेय की व्यवस्था नहीं है।
- पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के सम्बन्ध में सार्थक आलोचना/प्रतिक्रिया का स्वागत है।

स्वप्न : क्या, क्यों, कैसे

★ प्रो. वंशीधर त्रिपाठी

प्रो. वंशीधर त्रिपाठी

स्वप्न क्या है? क्यों आते हैं स्वप्न? कैसे बनते हैं स्वप्न? विगत हजारों वर्षों से मानव-मन ऐसे प्रश्नों को उठाने के साथ-साथ इनका उत्तर भी देता रहा है। स्वप्न क्यों आते हैं, इस प्रश्न का परम्परागत उत्तर तो यही है कि स्वप्न देवलोक से मानव-मन के लिए प्रेषित ऐसे संदेश हैं, जो भावी घटनाओं की सूचना देते हैं। जब वैज्ञानिक चिन्तन का क्रम प्रारम्भ हुआ तो लोगों को ऐसा लगने लगा कि स्वप्न-विषयक यह उत्तर यथा-तथ्य नहीं है। ऐसे में स्वप्न क्या है, स्वप्न क्यों आते हैं, मन में स्वप्न कैसे बनते हैं, जैसे प्रश्नों के उत्तर के लिए नये सिरे से खोज प्रारम्भ हुई। इस दिशा में सर्वाधिक व्यवस्थित प्रयास प्रसिद्ध मनोविश्लेषणवादी चिन्तक सिगमण्ड फ्रॉयड ने किया। सन् 1899 में इस विषय पर फ्रॉयड की एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसका शीर्षक था, 'एन इण्टरप्रेटेशन ऑफ ड्रीम्स'। इस पुस्तक में फ्रॉयड की स्वप्न-विषयक प्रमुख प्रस्थापनाएँ इस प्रकार थीं :

क. स्वप्न देवलोक से प्रेषित सन्देश न होकर सुप्तावस्था में मन की क्रीड़ा है।

ख. निद्रावस्था में अचेतन मन में स्थित दमित इच्छायें मानव-मन के अधस्तल से उठकर ऊर्ध्वस्तल पर आ जाती हैं। अचेतन मन के इसी बहिरागमन एवं संचरण को स्वप्न की संज्ञा दी जाती है।

ग. निद्रावस्था में मन पर अहं का नियंत्रण पूर्णतया समाप्त हो जाता है।

घ. सारे स्वप्नों के सृजन में न्यूनाधिक मात्र में कामवृत्ति की भूमिका होती है।

फ्रॉयड का स्वप्न-विषयक यह चिन्तन जब लोगों के सामने आया तो उन्हें ऐसा लगा कि स्वप्न जैसे गूढ़ एवं रहस्यमय विषय पर यह अन्तिम, सर्वथा सत्य एवं ग्राह्य विश्लेषण है। पर धीरे-धीरे फ्रॉयड की प्रस्थापनाओं के विरुद्ध प्रश्नचिन्ह लगने लगे। फ्रॉयड की प्रथम प्रस्थापना पर तो मनोवैज्ञानिकों में मतैक्य है, पर उसकी शेष तीन प्रस्थापनाओं की सत्यता में उन्हें संदेह है। स्वप्न से संबंधित कुछ वैकल्पिक प्रस्थापनाएँ इस प्रकार हैं-

1. अचेतन से ही नहीं, मन के सह-चेतन अथवा अव-चेतन संस्तर से संबंधित घटनायें भी स्वप्न में अवतरित होती हैं।

2. सभी स्वप्नों में अहं का नियंत्रण मन पर से पूर्णतया समाप्त नहीं

होता। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि स्वप्नद्रष्टा आंशिक रूप से यह जानता रहता है कि वह स्वप्न देख रहा है। फेडरिक वॉन ईडेन ऐसे स्वप्न को सरल (ल्यूसिड) स्वप्न की संज्ञा देता है। मन के ऊपर अहं के नियंत्रण की दृष्टि से स्वप्नों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। इन्हें हम दिवास्वप्न, सरलस्वप्न एवं पूर्णस्वप्न कह सकते हैं। दिवास्वप्न में मन पर अहं का पूर्ण नियंत्रण रहता है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि दिवास्वप्न की सारी कार्यवाही अहं की अध्यक्षता में होती है। सरल स्वप्नों में अहं का मन पर आंशिक नियंत्रण रहता है। इसीलिए ऐसे स्वप्नों में स्वप्नद्रष्टा को अनुभूति होती रहती है कि वह स्वप्न देख रहा है। पूर्ण स्वप्न की स्थिति में अहं का नियंत्रण मन पर पूर्णतया समाप्त हो जाता है। स्पष्ट है कि फ्रॉयड की प्रस्थापनायें पूर्ण स्वप्न तक ही सीमित है। दिवा और सरल स्वप्न उसकी विश्लेषण-सीमा से बाहर हैं।

3. फ्रॉयड के विश्लेषण की तीसरी विसंगति यह है कि वह सभी स्वप्नों को न्यूनाधिक रूप में कामभावना से प्रेरित मानता है। उसकी इस मान्यता को समग्र कामवाद (पान सेक्सुयलिज्म) कहा जाता है। इस मान्यता के अनुसार मनुष्य की प्रत्येक क्रिया के मूल में काम की भूमिका रहती है। वस्तुत: फ्रॉयड का व्यक्तिगत और पारिवारिक परिवेश कुछ ऐसा था, जिससे उसके मन में समग्र कामवाद जैसी प्रस्थापना का स्फुरण हुआ। उसने अपने निजी अनुभव को समष्टिगत मान्यता का आकार दे दिया। यही उसकी भूल थी। फ्रॉयड के समग्र कामवाद में अतिव्याप्ति का दोष माना जाता है।

फ्रॉयड के बाद विद्वानों ने स्वप्न विषय पर अब तक जो चिन्तन किया है, उसे समेकित करके आधुनिक स्वप्न-सिद्धान्त को कुछ ऐसा स्वरूप दिया जा सकता है। स्वप्न नामक प्रघटना के तीन पात्र होते हैं, ज्ञानेन्द्रियाँ, अहं तथा चेतना-व्यवस्था। जाग्रतावस्था में ज्ञानेन्द्रियाँ सक्रिय रहती हैं। उनकी सक्रियता के कारण स्वप्न की सत्ता सम्भव नहीं हो पाती। ज्ञानेन्द्रियों एवं स्वप्न के बीच सूर्य और तारों जैसा संबंध है। जब तक सूर्य का प्रकाश रहता है, तारे नहीं दिखते। सूर्यास्त होने पर ही तारों का उदय होता है। सजग ज्ञानेन्द्रियों को प्रकाश और स्वप्न को अन्धकार के रूप में अभिकल्पित किया जा सकता है। जिस प्रकार प्रकाश और अन्धकार का सह-अस्तित्व सम्भव नहीं है, उसी प्रकार सजग ज्ञानेन्द्रियाँ एवं स्वप्न भी एकसाथ नहीं रह सकते। ज्ञानेन्द्रियों की जाग्रतावस्था में यदि स्वप्न-सदृश्य कोई घटना होती है तो ऐसा सबकुछ अहं की अनुमति से होता है। इसे दिवास्वप्न कहते हैं। अहं को दिवास्वप्न बड़ा सुहावना लगता है। इसीलिए वह चेतना-व्यवस्था को कल्पना की उड़ान भरने का संकेत देता है। अहं से निर्देशित चेतना कल्पना के घोड़े दौड़ाकर आकाश-पाताल के कुलाबे मिलाती है। नदी, पर्वत, चन्द्र, सूर्य सभी लोकों की यात्रा क्षणार्ध में पूरी करके असंभव को संभव बना देती है। इसी प्रकार के कुछ दिवास्वप्न लोक में सत्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गये हैं। स्वर्ग, नरक, यमराज, धर्मराज, जैसे विश्वास दिवास्वप्न की इसी कोटि में आते हैं।

ज्ञानेन्द्रियों और चेतना-व्यवस्था में वही संबंध है जो नदियों और समुद्र में है। जैसे नदियाँ समुद्र में जल भरती रहती हैं, वैसे ही ज्ञानेन्द्रियाँ चेतना-व्यवस्था को संवेदनों और प्रत्यक्षणों से भरती रहती है। सुप्तावस्था में जब ज्ञानेन्द्रियों की सजगता आंशिक अथवा पूर्णरूप से स्थगित हो जाती है तो चेतना-व्यवस्था का व्यापार अहं एवं ज्ञानेन्द्रियों के नियंत्रण से मुक्त हो जाता है। नियंत्रण मुक्त होने पर चेतना-व्यवस्था का कार्य-व्यापार लगभग उच्छृंखल हो जाता है। जिस प्रकार समुद्र में अहर्निश लहरें उठती रहती हैं, उसी प्रकार चेतना-व्यवस्था में भी संचरण-व्यापार

फ्रॉयड के बाद विद्वानों ने स्वप्न विषय पर अब तक जो चिन्तन किया है, उसे समेकित करके आधुनिक स्वप्न-सिद्धान्त को कुछ ऐसा स्वरूप दिया जा सकता है। स्वप्न नामक प्रघटना के तीन पात्र होते हैं, ज्ञानेन्द्रियाँ, अहं तथा चेतना-व्यवस्था। जाग्रतावस्था में ज्ञानेन्द्रियाँ सक्रिय रहती हैं। उनकी सक्रियता के कारण स्वप्न की सत्ता सम्भव नहीं हो पाती। ज्ञानेन्द्रियों एवं स्वप्न के बीच सूर्य और तारों जैसा संबंध है।

चलता रहता है।

मुक्तावस्था में चेतना-व्यवस्था की लहरें देश-काल से संगति बैठाने की बाध्यता से मुक्त हो जाती है। इसीलिए चेतना-व्यवस्था स्थित सारी प्रतिमाएँ, अनुभूतियाँ एक-दूसरे से टकराकर इतनी विरूपित और गड्ड-मड्ड हो जाती हैं कि मूल प्रति से उनकी मिलान ही संभव नहीं हो पाती। मुक्त चेतना-व्यवस्था एक क्षण में ही किसी को लाखों मील दूर पहुँचा देती है। चेतना-व्यवस्था को इसमें असंभव जैसा कुछ नहीं लगता। ऐसा इसलिए होता है कि संभव-असंभव का निर्णय तो ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से अहं करता है। चूँकि सुप्तावस्था में होने के कारण दोनों निष्क्रिय हो गये रहते हैं, अतः चेतना-व्यवस्था का सारा 'असंभव खिलवाड़' चलता रहता है। अगर कहीं इसी खिलवाड़ के बीच ज्ञानेन्द्रियाँ और अहं सुप्तावस्था से जाग्रतावस्था में आ जाते हैं तो सारा बना-बनाया खेल बिगड़ जाता है। सारा गुड़-गोबर हो जाता है। जाग्रत ज्ञानेन्द्रियाँ सुप्तावस्था के सारे अनुभवों को क्षणांश में ही निरस्त कर देती हैं। एक व्यक्ति ट्रेन में यात्रा करता है। स्वप्न में वह देखता है कि वह अपने घर में लेटा है। इसी बीच उसकी आँख खुलती है तो वह तत्काल स्वप्नगत प्रत्यय को निरस्त कर देता है। रामचरितमानस में एक स्थान पर गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है-

> सपनेहु होंहि भिखारि नृप,
> रंक नाकपति होंइ
> जागे हानि न लाभ कछु,
> तिमि प्रपंच गति सोइ।

स्वप्न की लहरों को उठाने में वरीयताक्रम से तीन स्थितियों की भूमिका होती है, तनाव, स्मृति, एवं चेतना की तलस्थ अनुभूतियाँ। तनाव के अन्तर्गत तीन उपदशायें आती हैं। समस्या, आशंका एवं आकांक्षा। इन तीनों में से किसी एक की भी उपस्थित से चेतना व्यवस्था में हरकत या लहर पैदा होती है। यह लहर अन्य लहरों को जगाने का काम करती है। फिर इन लहरों में टकराव की स्थिति बन जाती है। लहरों का आपसी टकराव कुछ ऐसा होता है जैसे नाविक और पतवार के बिना आँधी और तूफान के थपेड़ों को झेलती, लड़ती-भिड़ती नावों का कारवाँ। एक उदाहरण। मान लीजिए मोहन ने सोहन से पैसा उधार लिया है। सोहन पैसा लौटाने का तकाजा करता है। मोहन के पास पैसा नहीं है। ऐसे में मोहन स्वप्न देख सकता है कि अचानक कहीं से उसे पैसा मिल गया और उसने मोहन का पैसा लौटा दिया। इस प्रकार मोहन जाग्रतावस्था में जिस समस्या को नहीं सुलझा पाता, स्वप्न उसे सुलझा देता है। कभी-कभी तो ऐसे स्वप्न दिख जाते हैं जो वस्तुतः समस्याओं का समाधान निकाल देते हैं।

आशंकाजनित तनाव की स्थिति में भी स्वप्न आते हैं। किसी का कोई सगा-संबंधी बीमार है। आशंका जनित तनाव की स्थिति में सगे-संबंधी की मृत्यु भी स्वप्न में दिख सकती है। अथवा स्वप्न का कोई चमत्कार उसे भला चंगा भी कर सकता है। भय और संदेह जैसी स्थितियाँ भी आशंका की कोटि में आती है। दिल्ली के एक वरिष्ठ पत्रकार, लेखक एवं बुद्धिजीवी हैं। वे प्रायः स्वप्न देखते हैं कि चेक आउट करते समय वे होटल का बिल चुकाना भूल जाते हैं। आकांक्षा से भी तनाव पैदा होता है। ऐसा तनाव भी स्वप्न-श्रृंखला का सृजन करता है। चुनाव में एक प्रत्याशी है। उसके जीतने की संभावना अति ही क्षीण है। ऐसा प्रत्याशी स्वप्न देख सकता है कि अचानक उसके पक्ष में जनमत उमड़ पड़ा और वह विजयी हो गया।

जब मन में तनाव नहीं रहता तो प्रायः स्वप्न नहीं आते। पर अपूर्ण निद्रा की स्थिति में कभी-कभी स्मृतियाँ जगती हैं और स्वप्न के रूप में मानस पटल पर तैरने लगती है। स्वप्न-सृजन में चेतना की तलस्थ अनुभूतियों की भी भूमिका होती है। प्रायः ऐसी अनुभूतियाँ अपने 'दरबे' से बाहर नहीं निकलतीं। पर कभी-कभी ज्वालामुखी की भाँति उनमें विस्फोट हो जाता है। ऐसी अनुभूतियाँ चेतना समुद्र की तलछटी में दबी-छिपी रहती हैं और जब चेतनाकाश तनाव और स्मृतिपरक स्वप्नों से मुक्त रहता है तो वे वहाँ अपना ताना-बाना बुनने लगती हैं। ऐसी अनुभूतियाँ शैशवकालीन भी हो सकती है। ज्ञातव्य है कि जब अहं तथा ज्ञानेन्द्रियाँ अखण्ड निद्रा में रहते हैं तो स्वप्न के उपर्युक्त तीनों कारण (तनाव, स्मृति एवं तलस्थ अनुभूतियाँ) निष्क्रिय हो जाते हैं। ऐसे में स्वप्नहीनता की स्थिति बन जाती है। इस अवस्था को सुसुप्ति कहा जाता है।

ऐसा कैसे हो सकता है कि स्वप्न देवलोक से प्रेषित संदेश न होने पर भी कभी-कभी सत्य हो जाते हैं? इस गहन प्रश्न के उत्तर के लिए यहाँ कुछ स्वप्नों का उदाहरण प्रस्तुत है।

1. डॉ. डी. एन. मजूमदार, लखनऊ

विश्वविद्यालय में मानवशास्त्र विभाग में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष थे। उनकी पुत्री कलकत्ता में रहती थी। एक दिन आधी रात को पुत्री ने ऐसा स्वप्न देखा कि पिता जी का देहान्त हो गया है। तत्काल उसने लखनऊ फोन लगाया। फोन डॉ. मजूमदार ने ही उठाया। पुत्री ने फोन करने का मंतव्य तो स्पष्ट रूप से नहीं बताया पर डॉ. मजूमदार ने पुत्री की मनोभावना का अनुमान लगा लिया। उन्होंने फोन पर कहा 'मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ। तुम लोग चिन्ता मत करो'। पुत्री से बात करने के बाद डॉ. मजूमदार बिस्तर पर आते हैं। उन्हें हार्टअटैक होता है और क्षणान्तर में ही वे काल-कवलित हो जाते हैं।

2. एक महिला को अपने पति के चरित्र पर सन्देह था। उसे शंका थी कि उसके पति का अपने कार्यालय की एक महिला से 'अफेयर' चल रहा है। स्वप्न में उसने देखा कि संबंधित महिला उसके घर में उसके पति के आलिंगन में है। अपने पति को ऐसी स्थिति में देखकर उसने विवाह-विच्छेद का निर्णय लिया और स्वप्न के क्रम में ही विवाह-विच्छेद हो गया। महिला ने स्वप्न भोर में देखा था। अत: उसे पूरा विश्वास हो गया कि उसकी शंका निर्मूल नहीं है। प्रात:काल वह अपने कार्यालय गई और दोपहर में अचानक लौट आई। अरे यह क्या! उसका पति तो ठीक उसी प्रकार उस महिला से आलिंगनबद्ध है, जैसा उसने स्वप्न में देखा था। स्वप्न का पूर्वांश तो सच निकल गया और उत्तरांश अर्थात् विवाह-विच्छेद भी कालक्रम में हो गया।

3. वाराणसी के एक महोदय मुंबई में कोई व्यवसाय करते थे। एक दिन उन्होंने स्वप्न देखा कि उनकी माता जी का देहान्त हो गया और मणिकर्णिका पर उनका दाह-संस्कार हो रहा है। घर फोन किया तो पता चला कि माता जी की तबीयत कुछ ज्यादा ही खराब है। बाद में घर से फोन मिला कि माता जी का देहान्त हो गया है। वे वाराणसी के कैन्ट स्टेशन से सीधे मणिकर्णिका पहुँचे। वहाँ उन्होंने स्वप्न में जिस रूप में माता जी को देखा था, घाट पर ठीक उसी रूप में देखा।

4. एक महोदय ने स्वप्न में देखा कि उनके सारे दाँत अचानक टूट गये। उन्होंने जानकारों से जब इस स्वप्न का निहितार्थ पूछा तो पता चला कि उनकी सारी संतानों का देहान्त उनके जीते-जी ही हो जायेगा। बताते हैं यह घटना सत्य सिद्ध हुई।

अब एक-एक स्वप्न की व्याख्या। व्याख्या के पूर्व स्वप्न के विषय में यह बात जान लेनी आवश्यक है कि हजारों-लाखों स्वप्नों में से एक-आध स्वप्न ही सत्य सिद्ध होते हैं। ऐसे स्वप्नों को ही लोग याद रखते हैं। जो स्वप्न असत्य सिद्ध हो जाते हैं, लोग उन्हें भूल जाते हैं। यदि स्वप्न देवलोक से प्रेषित सन्देश होते तो अधिकांशत: वे असत्य कैसे होते? स्वप्न-विषयक बहुत से अंधविश्वास लोक में प्रचलित हैं, जिनमें तीन निम्नलिखित हैं :

1. भोर में देखा गया स्वप्न सत्य होता है।

2. स्वप्न में जिसके लिए अनिष्ट की बात देखी जाती है, वह उसके विषय में घटित न होकर अन्य पर घटित होती है।

3. स्वप्न कभी-कभी प्रतीकों के रूप में दिखते हैं। विभिन्न प्रतीकों के क्या अर्थ है, लोक में इनकी तरह-तरह की व्याख्याएँ प्रचलित हैं।

स्वप्न कैसे सच हो जाते हैं? मनोवैज्ञानिक इस प्रश्न का उत्तर 'संयोगसिद्धान्त' के आधार पर देते हैं। अब पहले स्वप्न को लें। अपने दूरस्थ प्रियजनों से सम्बन्धित अनिष्ट की आशंकाएँ लोगों के मन में उठती रहती हैं। इनमें से कभी कोई आशंका स्वप्न के रूप में दिख जाती है। ऐसा विरल संयोग संभव है कि इधर स्वप्नदर्शन हुआ और उधर घटना घट गई। घटनाएँ किसी पारलौकिक सूत्र द्वारा संचालित होती है, विज्ञान ऐसी प्रस्थापना में विश्वास नहीं करता। इसी प्रकार दूसरा स्वप्न। शंकाकुल महिला को ऐसा स्वप्न आना स्वाभाविक है। यह विरल संयोग है कि वैसी घटना वास्तविक स्थिति में उसने स्वयं अपनी आंखों से देख ली, जिससे संबंधित स्वप्न का उत्तरार्थ भी चरितार्थ हो गया। तीसरा स्वप्न प्रथम स्वप्न जैसा है। चौथा स्वप्न प्रतीकात्मक है। अनिष्ट की घटनाओं को सीधे देखना कष्टकर होता है, इसीलिए प्रकारान्तर से ऐसी घटनाएँ स्वप्न में प्रतीक के रूप में दिखती हैं। 'ड्रीम्स व्हिच केम टू' नामक पुस्तक में ऐसे स्वप्नों का संकलन है, जो सत्य सिद्ध हुए। इस पुस्तक में वर्णित सभी स्वप्नों को संयोग-सिद्धान्त के प्रकाश में विश्लेषित किया जा सकता है।

❋❋

डॉ. कलीम आजिज़–शायरी में नये लहजे की इजाद

* डॉ. ज़ियाउर रहमान जाफ़री

हिन्दी से पी-एच.डी. और नेट, साथ ही पत्रकारिता हिन्दी में आलोचना की दो, बाल कविता की दो और हिन्दी ग़ज़ल की दो पुस्तकें प्रकाशित। निरन्तर लेखन, बिहार जनसताब्दी सम्मान प्राप्त।

सम्पर्क

ग्राम-पोस्ट - माफी
वाया - अस्थावां
जिला - नालंदा,
बिहार-803107
9934847941,
6205254255

कलीम आजिज़ का असल नाम कलीम अहमद था। 11 अक्टूबर, 1926 को उनकी पैदाइश हुई और 14 फरवरी 2015 को वह इस संसार से रुखसत हो गए। बिहार के नालंदा में एक तेल्हाड़ा गाँव है, जहाँ उनका आबाई घर है। उन्होंने पटना यूनिवर्सिटी से पी-एच.डी. की उपाधि ली, और वहीं उर्दू विभाग में लेक्चरर के तौर पर अपनी सेवाएं दीं। कॉलेज में पढ़ने के दौरान ही उनकी शायरी के प्रति दिलचस्पी बढ़ी और फिर यह सिलसिला लगातार चलने लगा। जहाँ तक शायरी की बात है, वह उर्दू दुनिया में दूसरे मीर के नाम से जाने गए। मीर वह शायर हैं जिसे मिर्ज़ा ग़ालिब भी अपना उस्ताद मानते थे, गालिब ने कहा था-'रेख्ता के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो ग़ालिब / सुना है अगले जमाने में कोई मीर भी था।' जाहिर है जब कलीम आजिज़ को दूसरा मीर कहा गया तो इससे उनके कद और कीमत का पता चलता है। 1975 में प्रकाशित उनके गजलों का संग्रह, 'वो जो शायरी का सबब हुआ', इतना लोकप्रिय हुआ कि उसकी गजलें हर खासो-आम की जबान पर स्थाई रूप से रहने लगीं। उनकी प्रसिद्ध किताबों में 'जब फसले बहाराँ आई थीं', 'अभी सुन लो मुझसे' का जिक्र भी उर्दू दुनिया में सम्मान के साथ लिया जाता है। ऐसा नहीं है कि उन्होंने शायरी ही लिखी, उनके गद्य की 'मजलिसे अदब' जैसी बहुत सारी किताबें हैं, लेकिन एक मशहूर शायर के तौर पर पूरी दुनिया में उन्हें अधिक जाना और पहचाना गया।

डॉ. कलीम आजिज़ क्लासिकल शायरी के लिए जाने जाते हैं। उनका अपना लबो लहजा है। असल में उनकी शायरी कोई कल्पना की उपजी हुई वस्तु नहीं है, बल्कि उनकी शायरी में जो दर्द है,वह उनका भोगा हुआ यथार्थ है, इसलिए उनकी शायरी हमारे दिल में किसी झरने -सी उतरती हुई चली जाती है।

सन् 1946 में तेल्हाड़ा में दंगा हुआ, उसमें कलीम आजिज़ की माँ और बहन समेत खानदान के बाईस लोग मार डाले गए। इस दंगे के बाद जो बच गए थे सब पाकिस्तान रवाना हो गए,पर कलीम आजिज़ को अपने वतन से इतनी मोहब्बत थी कि उन्होंने मुल्क को छोड़कर जाना गवारा नहीं किया। यहाँ यह बताना इसलिए जरूरी था कि कलीम आजिज़ की शायरी में जो विभाजन का दर्द और अपने लोगों के खोने की जो पीड़ा है,वो कोई थोपा नहीं हुआ है।

स्वयं कलीम आजिज़ के शब्दों में-
ये जो शायरी का सबब हुआ ये मामला भी अजब हुआ ।
मैं गजल सुनाऊँ इसलिए कि जमाना उसको भुला ना दे ।

अपने खास लहजे की शायरी के लिए कलीम आजिज़ पूरी दुनिया में जाने और पहचाने

गए। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी उन्हें काफी शोहरत और इज्जत मिली। उन्हें सरकारी सम्मान भी कम नहीं मिला। भारत सरकार ने जहाँ उन्हें पद्मश्री की उपाधि दी, तो बिहार सरकार ने उन्हें अपनी उर्दू सलाहकार समिति का अध्यक्ष बनाया। यह अलग बात है कि शासन से रुष्ठ कलीम आजिज़ बार-बार आग्रह पर भी पद्मश्री की उपाधि लेने नहीं गए, जिसे बाद में भटकते हुए डाक के माध्यम से किसी तरह उनके पास पहुँचा दिया गया। डॉ. कलीम आजिज़ साठ-सत्तर के दशक के बिहार के अकेले ऐसे शायर थे, जो लाल किला दिल्ली के मुशायरे में शरीक होते थे। 1976 में उनकी पुस्तक का लोकार्पण तत्कालीन महामहिम राष्ट्रपति के द्वारा किया गया था।

प्रोफेसर कलीम आजिज़ की शायरी में अपनी खास शैली और अलाहिदा अंदाज के कारण उनके ज्यादातर शेर लोगों की जबान पर चढ़ते चले गए, फिर उनकी यह मशहूर ग़ज़ल तो कलीम आजिज़ की पहचान ही बन गई-

दिन एक सितम एक सितम रात करो हो ।
वो दोस्त हो दुश्मन को मगर मात करो हो।
दामन पे कोई छींट ना खंजर पर कोई दाग।
तो कत्ल करो हो कि करामात करो हो

ये वो ग़ज़ल थी, जो आपातकाल के समय लिखी गई थी और सीधे-सीधे उनका यह शेर कातिल के करामात की निशानदेही कर रहा था। यही वह समय था जब हिंदी में दुष्यंत ने 'साये में धूप' लिखकर हिंदी पट्टी में धूम मचा दी थी।

पूरी उर्दू शायरी में कलीम आजिज़ की नाराजगी झलकती है। उनकी नाराजगी ये बेसबब नहीं है। उनके दिल में अपने खानदान के खोने और देश के बँटवारे का गम हमेशा मौजूद रहा। उनकी शायरी ही नहीं उनकी आवाज में भी एक टीस होती थी। जिस दर्द की अपनी वजह भी थी। स्वयं कई कलीम आजिज़ के कौल है कि -

ये आँसू बेसबब जारी नहीं है
मुझे रोने की बीमारी नहीं है

कलीम आजिज़ की शायरी का यह जलवा था कि किसी भी शायर को नापसंद करने वाले रघुपति सहाय फिराक गोरखपुरी भी उनकी ग़ज़लगोई के मुरीद थे। कलीम आजिज़ ने ग़ज़ल को अपने खून से सींचा था, इसलिए उन्होंने जो कहा वह शायरी किसी और से नहीं कही गई। बकौल कलीम आजिज़ -

ये तर्ज़े खास है कोई कहाँ से लाएगा
जो हम कहेंगे किसी से कहा न जाएगा

डॉ. कलीम आजिज़ शायरी में अपने प्रयोग के लिए भी जाने जाते हैं। हम कह सकते हैं कि उर्दू शायरी में नई शैली का इजाद कलीम आजिज़ से होता है। कुछ शेर देखें -

रखना है कहीं पाँव तो रक्खो है कहीं पाँव
चलना जरा आया है तो इतराये चलो हो
मरना तो बहुत सहज सी एक बात लगे है
जीना तो मोहब्बत में करामात लगे है

उनकी शायरी में खून, कत्ल, दामन और दमन की बात बार-बार आती है। कलीम आजिज़ को मुशायरों में चाहने वाला भी एक बड़ा वर्ग था। वह जहाँ होते थे, मुशायरा की कामयाबी की गारंटी होती थी। वह अपने मिजाज के शायर थे। एक बार मैंने गांधी मैदान बेगूसराय के मुशायरे में उन्हें अपनी पसंद की कोई खास ग़ज़ल सुनाने को कहा, तो वो नाराज हो गए थे। उनकी गजल का कुछ जादू ऐसा था, कि कलीम आजिज़ को खुद कहना पड़ा-

बयां जब कलीम अपनी हालत करे है
गजल क्या पढ़े है कयामत करे है

यह भी अजीब बात है कि पूरी उर्दू हिंदी शायरी में जाना जाने वाला यह शायर भेदभाव का भी शिकार हुआ। उर्दू जबानो अदब की तारीख़ लिखते हुए उन्हें वह तरजीह नहीं दी गई, जो मिलनी चाहिए। वह बिहार में भी किसी पाठ्यपुस्तक का हिस्सा नहीं बन सके। इंटरमीडिएट के उर्दू पाठ्यक्रम को छोड़ भी दें तो नवम और दशम वर्ग के पाठ्य पुस्तक में भी उनका नामोनिशान नहीं है। उर्दू की नवम वर्ग की किताब में तेईस और दशम वर्ग के पाठ्य पुस्तक में इक्कीस शायर शामिल हैं। इन दोनों वर्ग में सात शायर बिहार के हैं, पर कलीम अजीज वहाँ नदारद हैं। यह भी अजीब इत्तेफाक है कि शाद अज़ीमाबादी, जमील मज़हरी समेत यह तमाम के तमाम शायर शहर पटना के हैं, तो क्या यह मान लेना चाहिए कि पटना के बाहर बिहार के दिगर हिस्सों में अच्छी शायरी नहीं हो रही है।

बहरकैफ कलीम आजिज़ जैसे शायर पर इस युग को नाज़ है। उनका कद इतना बड़ा है कि इन छोटी चीजों से वह छोटे नहीं होते। पूरी दुनिया में यह एक अकेला शायर है, जिसकी शायरी कलम से नहीं जिगर के खून से लिखी गई है। इसलिए हर दुखी और षड्यंत्र का शिकार आदमी उनके अशआर में अपनी उपस्थिति पाता है।

❁❁

सूखती नदी का शोक गीत

★ डॉ. श्यामसुंदर दुबे

जन्म : 12 दिसंबर 1944 को हटा (दमोह) में.
शिक्षा : एम. ए., पी-एच. डी. (सागर विश्वविद्यालय)।
सृजन : आधा दर्जन से अधिक ललित निबंध संग्रह, तीन उपन्यास, कहानी संग्रह, कविता संग्रह, तीन नवगीत संकलनसहित विभिन्न विधाओं में अभी तक साठ से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान / पुरस्कार : केन्द्रीय हिंदी संस्थान एवं म.प्र. शासन के संस्कृति विभाग का राष्ट्रीय कबीर सम्मान सहित अनेक सम्मानों और पुरस्कारों से विभूषित।
संप्रति : सागर विश्वविद्यालय में निदेशक पद से सेवानिवृत्त। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन की दुनिया में सक्रिय ।

संपर्क :
हटा (दमोह), म.प्र. 470775
मो. 91 9977421629

जहांगीर महल पर सुरमई शाम उतर आई थी और उसके शीर्ष भाग पर स्थित छोटी-छोटी छतरियों में रंग-बिरंगे बच्चों की रोशनी दिपदिपाने लगी थी। सघन हरे जंगलों के बीचोबीच किसी तिलिस्म की तरह ओरछा का इतिहास-संभ्रम अपने रंगीन ताने-बाने बुन रहा था और मैं गीतकार नईम के साथ बेतवा के सँकरे पुल को पार करता हुआ ऊदी-ऊदी धूसर श्यामल चट्टानों से टकराती जलधारा का शाश्वत किंतु एकांत संगीत सुन रहा था। तब नईम ने न जाने अतीत के बोझ से छटपटाते हुए या बेतवा के विकल्प में अपनी सुनार नदी को अनुभव करते हुए मेरा हाथ जोर से दबाया और लगभग अपने से मुक्त होते हुए उन्होंने कहा था कि अबकी गरमी में वे अपनी जन्मभूमि फतेहपुर जरूर आएंगे। फतेहपुर उन्हें इसलिए आना है कि हटा की सुनार नदी उन्हें बुला रही है। उस नीम अंधेरे में भी उनकी आंखों में सुनार नदी उतर आई थी।

पचास वर्षों से दूर मालवा में हैं। सुनार बुंदेलखंड की एक नन्हीं-सी नदी है, जो उनके भीतर इन पचास वर्षों से कुलबुलाती रही है। एक तरल स्मृति की तरह एक चमकती-पिघलती ज्योति-रेखा की तरह। इसी जगमगाती, पिघलती, बहती नही में वे घुलते जा रहे थे। पहले उनका शरीर उस नदी में मछली बनकर भीतर तक घुसा, फिर वे नौका बनकर उसमें तिरे, फिर वे पुल बनकर उस पर लद गए। बाद में नदी उनकी स्मृतियों में लहर-लहर छहरी और उनका मन नदी बनकर बहने लगा। नदी एक प्रवाह मात्र नहीं है, नदी एक जातीय-स्मृति है, नदी एक संस्कृति है और नदी एक भावधारा भी है। नदी, धरती की वत्सला छाती में प्रवाहित होती दुग्धवाहिनी भी है।

नदी है तो लौट-लाट कर हम वहीं जाते हैं अपने होने की तस्दीक करने। हमारा नदी होना वैसे ही है, जैसे हम घर में होते हैं-घर के सपने बुनते। उन सपनों में ईट-दर-ईट घर बनाते। फिर भी हम सपने ही रहते हैं। सपनों का प्रवाह रहते हैं। नदी हमारा सपना है। मिस्टर त्रिवेदी से हटा में उनके पैतृक घर में भेंट हुई।

वे विगत चालीस वर्षों से कनाडा में हैं। उन्होंने कनाडा की ही महिला से विवाह किया है। उनके बच्चे वहीं जन्मे। वे छुट्टियों में अपनी कैनेडियन पत्नी के साथ अपने पैतृक घर आए थे। मैंने उनसे ढीठ होकर पूछा कि

केनेडा में रहते उनको इतने वर्ष हो गए हैं, अब तो वे सपने भी केनेडा के ही देखते होंगे। मैं उनके सपनों के विषय में जानना चाहता था कि क्या उनकी, उनके सपनों में भी देश निकाला जैसी स्थिति बन गई है? उन्होंने थोड़ी देर सोचा और बताने लगे कि सपने तो सब तरह के आते हैं, लेकिन एक सपना अक्सर आता है। सुनार नदी में तैरने का और उसमें डूब जाने का। डूब जाता हूँ तो आँखें खुल जाती हैं।

मिस्टर त्रिवेदी कवि नहीं हैं। वे इंजीनियर हैं। अपना सपना सुनाकर खूब हँसते हैं। उनकी केनेडियन पत्नी भी हँसती हैं और कहती हैं कि उनके हसबैंड होमसिकनेस से पीड़ित हैं। सुनार नदी उनके लिए पवित्र घर जैसी है। ए डर्टी रिवर। वे फिर जोर-जोर से हँसती हैं। मैं तो सपने में इस नदी में नहीं उतर पाऊंगी। मिस्टर त्रिवेदी अनमने हो गए। उनकी हँसी वहीं दब गई। नईम भी अनमने हो गए थे-बेतवा के पुल के दूसरे छोर पर पहुँचकर, जब मैंने उन्हें बताया कि सुनार नदी गहरी और भरपूर नहीं रही। पिछले तीन-चार साल में तो गर्मियों में यह बिल्कुल डबरा-डबरा हो जाती है। उसके अंजर-पंजर निकल जाते हैं। नदी में ट्रैक्टर, रिक्शे और जीप चलने लगते हैं। पूरी नदी हिलबिलान होने से बचने की जी-तोड़ कोशिश कर रही है। नईम की उदासी मैंने ताड़ ली थी। शायद अब वे हटा, फतेहपुर में आ पाएँ ।

यह सचाई है कि हमारी प्राण-स्रोत नदियां अपना सौंदर्य खो रही हैं। नर्मदा का जल-स्तर घट गया है। कल ही मुख्यमंत्री का वक्तव्य आया है कि गांधी सागर बांध की ऊंचाई इसलिए कम की जा रही है कि अब नर्मदा में पहले जैसा जल नहीं बचा है। मुझे अचरज होता है ऋषि की उस भविष्यवाणी पर जिसमें उसने कहा था कि पृथ्वी पर से जब गंगा लुप्त हो जाएगी, तब समझ लेना कि अब कलियुग की करालता ने दुनिया को दबाना शुरू कर दिया है। नर्मदा और यमुना तो बहुत पहले ही अंतर्धान हो जाएंगी। उसने अपनी फंतासीनुमा भाषा में इसे नदियों का 'निजलोक गमन' कहा है और इस रूपक को एक पौराणिक आवरण दे दिया। जब कलियुग की पाप प्रबलता बढ़ जाएगी, तब ये नदियां अपने-अपने लोक को प्रस्थान कर जाएंगी। क्या सरस्वती नदी का निजलोक गमन इस ऋषि ने देख लिया था? उस हिमगलिता को मरुधरा होते उसने किस गहन पीड़ा के साथ अनुभव किया होगा? शायद उस पीड़ा का नाम ही उस ऋषि ने कलियुग दिया है। सरस्वती कोई साधारण नदी तो थी नहीं, सांस्कृतिक जीवन की अनेक महागाथाओं को वह अपनी प्रत्येक लहर में समेटे थी। मनुष्य की अंतश्चेतना और धरती की प्रकृति परंपरा को सरस करने वाली यह नदी एक संपूर्ण सभ्यता थी, एक संपूर्ण जीवन पद्धति थी। ऋषि ने इस नदी को विलुप्त होने से बचाने के लिए अनंत प्रार्थनाएं की होंगी। अनंत रक्षा स्त्रोत रचे होंगे और जब नदी नहीं बच पाई होगी तो उसने नदी को अपनी स्मृति में बसा लिया होगा - वाक् की सृजनधर्मी शक्ति संपदा के रूप में। तब से सरस्वती संपूर्ण वाङ्मय बनकर आज तक अंत:प्रवाही है।

हमारी चेतना की अंत:वाहिनी बनकर सरस्वती जबसे नदी नहीं रही, तब से वह परा-प्रवाहिनी बन गई है। कैसे सूखी होगी इतनी बड़ी नदी? कैसे उसके सरस किनारे रेत के विस्तार में तब्दील हो गए होंगे? यह एक रहस्य कथा भी है और मानवकृत अपराध-कथा भी है। सर्जक का अपनी सुपुत्री के साथ ही क्रूरतम बलात्कार है। ब्रह्मा के इस जघन्य अपराध ने भले ही उन्हें अपूजनीय बना दिया, किंतु हमसे एक नदी तो छिन गई। मुक्तिबोध ने अपनी एक कविता में ब्रह्मा को पूंजीवाद से जन्मी भोगवादी प्रवृत्ति का प्रतीक माना है और यह सिद्ध किया है कि भोगवाद ही बार-बार सृजन उत्प्रेरिका सरस्वती से बलात्कार करता है। सरस्वती विलुप्त हुई और उसके प्रतीक को हमने सुरक्षित रख लिया। आज भी वह प्रयाग के संगम में गीर्वाण नदी की तरह उपस्थित है। अब तो हमारे पास प्रतीक रचने की सामर्थ्य भी कम हो गई है। इस सृजन स्तब्धता में जो नदी आज विलुप्त होगी, उसके लिए हमारे पास प्रतीक ही नहीं रहेंगे।

नदी के रूप में केवल एक जलधारा ही विलुप्त नहीं होती है। हमारी जीवन पद्धत्ति की एक जीवनधारा ही स्मृतिशेष हो जाती है। नदी से हमारे संबंध केवल उपभोग आधारित नहीं है। नदी हमारी मां है, बहिन है। नर्मदा, यमुना, गंगा केवल नदी नहीं हैं। वे पालनहार मैया हैं। लोक कभी इन नदियों के कोरे नाम नहीं लेता, वह गंगा मैया, नर्मदा मैइयाा कहकर ही संबोधित

करता है। नदी उसे पालती-पोसती है और मुक्ति भी देती है। नदियों में अस्थि-विसर्जन से जुड़ी मुक्ति-भावना हमारी नदियों के प्रति अगाध आस्था का प्रतीक भाव है। अपने पूर्वजों की अस्थियां गले में ताबीज जैसी लटकाए हजारों यात्री प्रतिदिन प्रयाग धाम की यात्रा करते हैं और अपने पूर्वजों की मुक्तियात्रा पूर्ण करते हैं।

आदमी की लोक-मुक्ति करते-करते नदियां भी अपनी मुक्ति के लिए छटपटा रही हैं। अगले सभी तरह के युद्ध जल को लेकर छिड़ेंगे, यह घोषणा आज के राजनीतिक और समाजशास्त्री कर रहे हैं। बची-खुची नदियों के उपयोग पर खून की नदियां बहेंगी। कावेरी-जल विवाद, नर्मदा-जल विवाद, सतलुज जल-विवाद, जितनी नदियां उतने जल विवाद। क्या उसी आगामी युग के बौद्धिक और राजनीतिक ट्रेलर नहीं हैं? पड़ोसियों में अक्सर अपने घरों की मोरियों को लेकर ठनती रहती है-तुम्हारी मोरी का गंदा पानी हमारे आंगन में घुस रहा है। तुम्हारी मोरी का पानी भरा कीचड़ हमारे घर में मच्छर पैदा कर रहा है। क्या नदियों की दुर्दशा मोरियों जैसी होने वाली है? विदिशा के आसपास कालिदास की प्रणय-क्रीड़ालीन नदी वेत्रवती इतनी सड़-गल चुकी है कि पशु-पक्षी उसका जल पीकर मर रहे हैं। सरकार को उसके जल-उपयोग पर प्रतिबंध लगाना पड़ रहा है। नदियों की हिम्मत टूट रही है। वे धरती की सफाई का संकल्प लेकर अवतरित हुई थीं, किंतु मनुष्य ने इतना कबाड़ा कर डाला है, इतना मैला उगल दिया है कि नदियां यक्ष्मा से पीड़ित हो गई हैं- ये हांफ-हांफ कर जी रही हैं।

बीमार नदियों से हमारी ईकोलॉजी गड़बड़ा रही है। एक बार हमारी इकोलॉजी विडंबित हुई तो फिर मनुष्य को ही नदियों का नरक भोगना पड़ेगा। वे तो विलुप्तप्राय होंगी सो होंगी ही, मानव जाति के विलोपन का खतरा बढ़ जाएगा। नदियां तो अपने नीर के कारण ही सृष्टि का सौंदर्य हैं। उनकी निर्मलता ही मनुष्य के भीतर की और बाहर की सफाई करती आई है। जिस निर्मलता को देखकर ही मन निर्मल हो जाए, ऐसी निर्मलता नदियों को दृष्टि तीर्थ बनाती है। नदी की निर्मलता के दर्शन, स्पर्श और पान से जो मुक्तिभाव जनमता है, उस भाव के सामने ईश्वर हेय हो जाता है। 'कबिरा मन निरमल भया जैसे गंगा नीर। पाछे-पाछे हरि फिरें कहत कबीर-कबीर!' आदमी की निर्मल भावना ही उसे ईश्वर से बड़ा बनाती है। नईम यदि सुनार की स्मृति को अपनी भीतर संजोए हुए हैं, उससे मिलने को छटपटा रहे हैं, तो यह नदी ही है जो उन्हें कवि बनाए हुए हैं। अब यही नदी सांसत में है-अपने प्राणों को बचाने के लिए छटपटा रही है।

यदि नदियां गायब होती रहीं तो हमारी अगली पीढ़ियों की नदी-स्मृतियां ही गायब हो जाएंगी। नदी स्मृतियों का गायब हो जाना है-कबीर का गायब हो जाना। मिलान कुंदेरा यदि कहता है कि आदमी का संघर्ष वस्तुत: विस्मृति के विरुद्ध स्मृति का संघर्ष है तो वह स्पष्ट रूप से इस बात को महत्त्व देता है कि हमारा मन गंगा जैसा निर्मल होना चाहिए। निर्मल मन में ही स्मृतियां कौंधती हैं। स्मृतियों की बिम्बात्मकता प्रकट होती है तथा निर्मल मन की स्मृतियां ही सृजन संभावना को प्रकट करती हैं। सरस्वती नदी जब वाङ्मय का प्रतीक बनती है, तब वह स्मृतियों की प्रतीकात्मकता का ही परिणाम होती है।

नदी हो जाने का अर्थ है-अपनी चेतना में निष्कपट हो जाना, अपनी स्मृति को जीवन के आर-पार ले जाना, धरती अपनी स्मृतियों को जिन प्राकृतिक चीजों के माध्यम से सुरक्षित रखती है और गतिशील है, उनमें जंगल, नदी, पहाड़ सब समाहित होते हैं। धरती की स्मृतियां मनुष्य के मन में इन्हीं सबके माध्यम से उतरती हैं। आकृतिवान होती हैं और उसके भावजगत को फैलाती हैं। उसे मनुष्य होने के अर्थ देती हैं, किंतु जब मनुष्य ही उनके ध्वंस में जुटा हो, नदी का जल मल में बदल रहा हो, तब स्मृतियों की रक्षा कैसे की जा सकती है? जल तो मल बन रहा है, धीरे-धीरे दलदल बनेगा-फिर दलदल-फिर दलदल ठोस हो जाएगा। नदी ठोस हो जाएगी तो उसका अता-पता ही नहीं चलेगा। आदमी की ताकत आदमी के विरुद्ध ही लग रही है। वह अपना अंतर्ध्वंस कर रहा है। स्मृतिहीनता के समारंभ का यह दारुण समारोह हम सब देख रहे हैं। अब नदी हमारी चेतना के पीछे पछिआती नहीं है। मेरी सुनार नदी कनाडा के मिस्टर त्रिवेदी के स्वप्नों में अभी भी शेष है, किंतु लगता है कि अब उसकी यह अंतिम स्मृति छटपटाहट है।

सांस्कृतिक निरक्षर समाज में कविता

* परिचय दास

मूल नाम : रवींद्र नाथ श्रीवास्तव
जन्म : मऊ (पूर्व में आजमगढ़, उत्तर प्रदेश)।
शिक्षा : पी-एच. डी.
सृजन : 11 से अधिक कविता संग्रह और 35 से अधिक अन्य विधाओं पर केंद्रित पुस्तकें (लिखित/ संपादित)। हिंदीपत्रिका 'इंद्रप्रस्थ भारती' और मैथिली-भोजपुरी पत्रिका 'परिछन' के पूर्वसंपादक। हिंदीमासिकी 'गौरवशाली भारत' के प्रधान संपादक।
संप्रति : नव नालंदा महाविहार विश्वविद्यालय, नालंदा में हिन्दी के प्रोफेसर। मैथिली-भोजपुरी अकादमी, दिल्ली सरकार व हिन्दी अकादमी, दिल्ली सरकार के पूर्वसचिव।
मोबाइल- 9968269237
ई मेल- parichaydaspoet@gmail.com

सांस्कृतिक निरक्षरता केवल अक्षरज्ञान से जुड़ी हुई समस्या नहीं है। कोई व्यक्ति पढ़ा-लिखा होते हुए भी सांस्कृतिक रूप से निरक्षर हो सकता है और कोई अनपढ़ होते हुए भी सांस्कृतिक रूप से समृद्ध हो सकता है। यह विरोधाभास दरअसल हमारे समय की सबसे जटिल वास्तविकताओं में से एक है। एक व्यक्ति विश्वविद्यालयों की उच्चतम डिग्रियाँ प्राप्त कर सकता है, वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान में निपुण हो सकता है, लेकिन यदि उसमें अपनी संस्कृति, परंपराओं, लोकजीवन और साहित्य के प्रति संवेदनशीलता नहीं है तो वह सांस्कृतिक रूप से निरक्षर कहलाएगा। इसी प्रकार, गाँव का कोई साधारण व्यक्ति जो औपचारिक शिक्षा से वंचित है, किंतु जिसने अपने जीवन के अनुभवों से भाषा, परंपराओं और जीवन-मूल्यों को आत्मसात किया है, वह सांस्कृतिक रूप से समृद्ध हो सकता है। इस पृष्ठभूमि में कविता का प्रश्न उठता है, क्योंकि कविता न केवल भाषा की शक्ति का सबसे परिष्कृत रूप है, बल्कि वह समाज की संवेदनशीलता और सांस्कृतिक चेतना का दर्पण भी है।

कविता केवल लेखन का एक माध्यम नहीं है, बल्कि यह समाज की स्मृति, अनुभव और उसकी गहरी सांस्कृतिक चेतना का परिणाम होती है। जब कोई समाज सांस्कृतिक रूप से निरक्षर होता है तो कविता का प्रभाव क्षेत्र सीमित हो जाता है। यह सीमितता केवल कविता के पाठकों की संख्या से नहीं जुड़ी होती, बल्कि यह इस बात से भी जुड़ी होती है कि समाज में कविता को किस तरह देखा और समझा जाता है। सांस्कृतिक निरक्षर व्यक्ति के लिए कविता एक गैरजरूरी चीज़ होती है, एक ऐसा विलास जिसे केवल 'फुरसत के लोग' पढ़ते और सराहते हैं। इस तरह की मानसिकता का प्रभाव यह होता है कि कविता धीरे-धीरे मुख्यधारा से बाहर होने लगती है और उसकी जगह सतही मनोरंजन और उपभोक्तावादी भाषा ले लेती है।

सांस्कृतिक निरक्षरता की समस्या केवल समाज के एक वर्ग तक सीमित नहीं है। यह केवल उन लोगों की समस्या नहीं है, जिन्हें औपचारिक शिक्षा नहीं मिली है बल्कि यह उन लोगों की भी समस्या है, जो शिक्षित होते हुए भी अपने समाज और संस्कृति से कट गए हैं। ऐसे लोग कविता को एक व्यर्थ की वस्तु मानते हैं, जो किसी ठोस लाभ या व्यावसायिक सफलता से जुड़ी नहीं है। यह प्रवृत्ति आधुनिक शिक्षा प्रणाली की भी देन है जहाँ साहित्य, कला और भाषा को महत्त्वहीन मानकर विज्ञान और तकनीकी शिक्षा को ही सब कुछ समझा जाता है।

इस सोच के कारण कविता और अन्य कलाओं का स्थान धीरे-धीरे घटता जा रहा है।

जब कोई समाज अपनी संस्कृति से कट जाता है तो वह केवल साहित्य से ही नहीं, बल्कि अपनी भाषा से भी दूर हो जाता है। भाषा केवल संचार का माध्यम नहीं होती, बल्कि वह हमारी स्मृति और चेतना की वाहक होती है। जब कोई समाज अपनी भाषा को केवल कार्य-व्यवहार के रूप में देखने लगता है और उसमें संवेदनशीलता तथा कल्पनाशीलता का स्थान नहीं रह जाता तब कविता का स्थान स्वत: ही कम होने लगता है। यह समस्या आधुनिक वैश्वीकरण और डिजिटल युग में और भी गहरी हो गई है, जहाँ भाषा का प्रयोग केवल सूचना संप्रेषण तक सीमित होता जा रहा है। कविता, जो भाषा की संभावनाओं को विस्तारित करती है धीरे-धीरे अपने स्वाभाविक स्थान से हटकर एक सीमित दायरे में सिमटने लगती है।

सांस्कृतिक निरक्षरता का प्रभाव केवल भाषा तक सीमित नहीं रहता बल्कि यह मनुष्य की संवेदनशीलता को भी प्रभावित करता है। कविता केवल शब्दों का खेल नहीं है, बल्कि यह जीवन के अनुभवों की अभिव्यक्ति है। जब कोई समाज संवेदनहीन हो जाता है, जब उसमें तात्कालिक लाभ और उपभोक्तावादी प्रवृत्तियाँ हावी हो जाती हैं तो कविता को सुनने और समझने की क्षमता भी घटने लगती है। आज हम ऐसे ही दौर में खड़े हैं, जहाँ लोग कविता को पढ़ने से ज्यादा तात्कालिक और सतही मनोरंजन में रुचि रखते हैं।

यह विडंबना है कि सांस्कृतिक निरक्षरता केवल उन लोगों तक सीमित नहीं है, जो औपचारिक शिक्षा से वंचित हैं बल्कि कई बार तथाकथित शिक्षित लोग भी सांस्कृतिक रूप से दरिद्र होते हैं। वे कविता को केवल एक बौद्धिक विलास मानते हैं जो उनके लिए कोई व्यावहारिक उपयोगिता नहीं रखती। इस प्रवृत्ति का प्रभाव यह होता है कि कविता या तो पूरी तरह से उपेक्षित हो जाती है या फिर वह महज़ एक औपचारिक गतिविधि के रूप में सिमटकर रह जाती है। आज विश्वविद्यालयों और शिक्षा संस्थानों में कविता को जो स्थान मिलना चाहिए, वह नहीं मिल रहा है। इस उपेक्षा का नतीजा यह है कि नई पीढ़ी कविता से दूर होती जा रही है।

यह विडंबना है कि सांस्कृतिक निरक्षरता केवल उन लोगों तक सीमित नहीं है, जो औपचारिक शिक्षा से वंचित हैं बल्कि कई बार तथाकथित शिक्षित लोग भी सांस्कृतिक रूप से दरिद्र होते हैं। वे कविता को केवल एक बौद्धिक विलास मानते हैं जो उनके लिए कोई व्यावहारिक उपयोगिता नहीं रखती। इस प्रवृत्ति का प्रभाव यह होता है कि कविता या तो पूरी तरह से उपेक्षित हो जाती है या फिर वह महज़ एक औपचारिक गतिविधि के रूप में सिमटकर रह जाती है।

सांस्कृतिक निरक्षरता का प्रभाव केवल कविता की लोकप्रियता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह कवियों की मानसिकता और उनकी रचनात्मकता को भी प्रभावित करता है। जब समाज कविता को महत्त्व नहीं देता तो कवियों में भी दो प्रवृत्तियाँ उभरती हैं-एक ओर वे कवि होते हैं जो समाज की उपेक्षा के बावजूद अपनी रचनात्मकता को बचाए रखते हैं, और दूसरी ओर वे होते हैं, जो कविता को केवल एक फैशन या प्रचार का माध्यम बना लेते हैं। यह दूसरी प्रवृत्ति कविता को उसकी गहराई और प्रभाव से दूर कर देती है और उसे केवल सतही और तात्कालिक चीज़ में बदल देती है।

सांस्कृतिक निरक्षरता के कारण कविता की जगह धीरे-धीरे संकुचित होती जा रही है। पहले कविता जनमानस का हिस्सा थी। लोकगीतों, भजन, दोहों और छंदों के माध्यम से लोग कविता को अपने जीवन में महसूस करते थे। लेकिन अब स्थिति बदल रही है। औपचारिक शिक्षा प्रणाली ने कविता को केवल पाठ्यक्रम तक सीमित कर दिया है और दैनिक जीवन में उसकी भूमिका कम होती जा रही है। जब कोई समाज अपनी सांस्कृतिक विरासत से कट जाता है तो वह न केवल कविता से दूर होता है, बल्कि वह अपनी संवेदनशीलता और भाषा की गहराई से भी कट जाता है।

सांस्कृतिक निरक्षरता को दूर करने के लिए केवल औपचारिक शिक्षा पर्याप्त नहीं है। इसके लिए समाज में

कविता और साहित्य के प्रति जागरूकता बढ़ानी होगी। कविता केवल कुछ विद्वानों या साहित्यकारों तक सीमित न रहे, बल्कि वह समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँचे। यह तभी संभव है जब लोग अपनी भाषा, अपनी परंपराओं और अपनी सांस्कृतिक धरोहर के प्रति संवेदनशील होंगे।

कविता केवल अतीत की चीज़ नहीं है, बल्कि यह भविष्य की भी भाषा है। यदि कोई समाज कविता से कट जाता है तो वह केवल अपनी जड़ों से ही नहीं, बल्कि अपनी संभावनाओं से भी कट जाता है। कविता केवल शब्दों की सजावट नहीं, बल्कि यह समाज के मन और मस्तिष्क की गहराई से निकली हुई अभिव्यक्ति है। यदि हम चाहते हैं कि हमारा समाज केवल तकनीकी रूप से नहीं, बल्कि सांस्कृतिक रूप से भी समृद्ध हो तो हमें कविता को पुनः स्थापित करना होगा।

सांस्कृतिक निरक्षरता के इस दौर में कविता एक चुनौती भी है और एक समाधान भी। यह चुनौती इसलिए है क्योंकि समाज में इसकी स्वीकृति कम होती जा रही है, लेकिन यह समाधान भी है क्योंकि कविता ही वह माध्यम है जो हमें हमारी भाषा, संवेदनाओं और सांस्कृतिक चेतना से जोड़ सकती है। यदि हम इस सांस्कृतिक निरक्षरता को दूर करना चाहते हैं तो हमें कविता को फिर से जीवन का अनिवार्य हिस्सा बनाना होगा। यह केवल कवियों की जिम्मेदारी नहीं है, बल्कि यह पूरे समाज की जिम्मेदारी है। जब तक कविता जीवित है, तब तक समाज भी अपनी सांस्कृतिक चेतना में जीवित रहेगा।

○ ○ ○

कविता मनुष्य के भीतर संवेदनशीलता और सौंदर्यबोध को जागृत करने का सबसे प्रभावी माध्यम है। यह भाषा के माध्यम से विचार, अनुभूति और कल्पना को आकार देती है। लेकिन जब समाज सांस्कृतिक रूप से निरक्षर हो जाता है, तब कविता का स्वरूप, उसकी भूमिका और प्रभाव भी बदल जाता है। सांस्कृतिक निरक्षरता केवल अशिक्षा का परिणाम नहीं होती, बल्कि यह शिक्षित समाज में भी पाई जा सकती है। यह उस स्थिति की ओर संकेत करती है जहाँ व्यक्ति पारंपरिक, साहित्यिक, कलात्मक और दार्शनिक मूल्यों से कटा हुआ होता है, जहाँ उसकी चेतना केवल व्यावसायिकता, उपभोक्तावाद और यांत्रिक जीवन की धारा में प्रवाहित होती है। ऐसे समाज में कविता की भूमिका और उसकी आवश्यकता और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

कविता किसी भी समाज का दर्पण होती है। वह मनुष्य के भीतर छिपे भावों को उजागर करती है, उन अनुभूतियों को शब्द देती है, जिन्हें आमतौर पर व्यक्ति व्यक्त नहीं कर पाता। लेकिन जब समाज सांस्कृतिक रूप से असंवेदनशील हो जाता है, जब लोग कविता को सिर्फ मनोरंजन का साधन मानने लगते हैं या उससे पूरी तरह कट जाते हैं, तब कविता की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिह्न लगने लगता है। फिर भी, यह सोचना कि कविता ऐसे समाज में अप्रभावी हो जाती है, एक बड़ी भूल होगी। दरअसल, ऐसे ही समय में कविता अधिक प्रासंगिक हो जाती है, क्योंकि वह सांस्कृतिक चेतना को जगाने का कार्य करती है। वह उन ध्वनियों, उन प्रतिरोधों और उन संवेगों को पुनर्जीवित करती है, जो सांस्कृतिक निरक्षरता के कारण दब चुके होते हैं।

कविता की भूमिका सिर्फ सौंदर्यबोध तक सीमित नहीं होती, वह समाज में जागरूकता और प्रश्नाकुलता को भी जन्म देती है। जब समाज संवेदनहीन होता जाता है, जब उसमें अतीत की स्मृतियाँ धुंधली पड़ने लगती हैं, तब कविता उस इतिहास को जीवित रखने का कार्य करती है। वह लोगों को उनके समाज, उनकी परंपरा और उनकी जड़ों से जोड़ती है। सांस्कृतिक निरक्षरता केवल अज्ञानता का पर्याय नहीं है, बल्कि यह उस मानसिकता को भी दर्शाती है, जहाँ मनुष्य अपनी जड़ों, अपनी भाषा और अपनी सांस्कृतिक विरासत से कट जाता है। ऐसी स्थिति में कविता न केवल स्मृति को जीवित रखती है, बल्कि वह उन भावनाओं को भी प्रकट करती है, जो समाज के भीतर दबी होती हैं।

आज के दौर में, जब साहित्य को केवल बौद्धिकता का माध्यम मान लिया गया है और कविता को एक अभिजात्य कला समझा जाने लगा है, तब इसकी भूमिका और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। सांस्कृतिक रूप से निरक्षर व्यक्ति, चाहे वह अनपढ़ हो या उच्च शिक्षित, कविता को या तो अव्यावहारिक मानता है या फिर उसे एक निष्प्रभावी कला समझकर नजरअंदाज कर देता है, लेकिन यह सच नहीं है। कविता हमेशा परिवर्तन की वाहक रही है। चाहे वह संत कवियों की वाणी हो, भक्ति

आंदोलन की कविताएँ हों, स्वतंत्रता संग्राम के दौरान की कविताएँ हों या फिर आधुनिक युग में प्रतिरोध की कविताएँ–हर दौर में कविता ने समाज को झकझोरा है।

सांस्कृतिक निरक्षरता तब जन्म लेती है, जब लोग भाषा की आत्मा से कट जाते हैं, जब वे शब्दों को केवल संप्रेषण का माध्यम मानकर चलते हैं और उनमें निहित अर्थों की गहराई को समझने का प्रयास नहीं करते। कविता इस खोखलेपन को भरने का कार्य करती है। वह शब्दों में जीवन डालती है, भाषा को जीवंत बनाती है और विचारों को बहुआयामी स्वरूप प्रदान करती है। जो समाज कविता को महत्त्व नहीं देता, वह धीरे–धीरे अपनी भाषाई संवेदनशीलता खोने लगता है। भाषा की मृत्यु केवल शब्दों के लुप्त होने से नहीं होती, बल्कि तब भी होती है जब समाज की चेतना भाषा की गहराई को समझने में असमर्थ हो जाती है।

ऐसे समय में, कविता न केवल सौंदर्य की स्थापना करती है, बल्कि वह प्रतिरोध का स्वर भी बनती है। जब समाज उपभोक्तावाद में लिप्त हो जाता है, जब मनुष्य केवल भौतिक उपलब्धियों को ही सफलता का पैमाना मानने लगता है, तब कविता उसे आत्ममंथन करने के लिए बाध्य करती है। वह उसके भीतर के खोए हुए भावों को जाग्रत करती है और उसे अपनी संवेदनाओं से पुनः जोड़ती है।

आज हम जिस दौर में जी रहे हैं, वह तकनीकी युग का दौर है। इस युग में मनुष्य की संवेदनाएँ मशीनों की तरह कार्य कर रही हैं। भावनाएँ एक तरफ सिमटती जा रही हैं और मनुष्य की आत्मा कहीं खोती जा रही है। कविता इस संकट को दूर करने का प्रयास करती है। वह मनुष्य को पुनः संवेदनशील बनाती है, उसे उसके भीतर छिपी मानवता से जोड़ती है। जब समाज कविता से कटता है, तब वह केवल सूचना और ज्ञान के स्तर पर चलता है, लेकिन जब वह कविता से जुड़ता है, तब उसमें संवेदनशीलता का संचार होता है।

कविता केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं है, वह विचारों की ऊर्जा भी है। वह केवल कल्पना की उड़ान नहीं है, बल्कि यथार्थ की जटिलताओं को देखने और समझने का एक माध्यम भी है। एक सांस्कृतिक रूप से निरक्षर समाज में कविता की भूमिका इसलिए और अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि वह न केवल अतीत की स्मृतियों को जीवित रखती है, बल्कि भविष्य की दिशा को भी इंगित करती है। वह प्रश्न पूछती है, उत्तर तलाशती है और मनुष्य के भीतर नई चेतना का संचार करती है।

ऐसे समाज में जहाँ लोग कविता को गैरज़रूरी समझने लगे हैं, वहाँ उसकी आवश्यकता पहले से कहीं अधिक बढ़ जाती है। कविता का कार्य केवल मनोरंजन देना नहीं, बल्कि एक गहरे स्तर पर समाज को संवेदनशील बनाना है। वह भाषा को केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं रहने देती, बल्कि उसे एक जीवंत अनुभव में बदल देती है। जब लोग कविता को महत्त्व नहीं देते तो वे धीरे–धीरे अपनी सांस्कृतिक चेतना को भी खो देते हैं। कविता उन्हें यह स्मरण कराती है कि जीवन केवल यांत्रिकता में नहीं बल्कि अनुभूति और संवेदना में भी बसता है।

सांस्कृतिक निरक्षर समाज में कविता की भूमिका केवल सौंदर्यबोध तक सीमित नहीं है, बल्कि वह एक आंदोलन, एक प्रतिरोध और एक पुनर्जागरण का कार्य भी करती है। वह समाज को उसकी जड़ों से जोड़ती है, उसे उसकी भाषा, उसकी परंपरा और उसकी चेतना से परिचित कराती है। जब समाज कविता से कटता है तो वह अपनी आत्मा से भी कटने लगता है और जब वह कविता से जुड़ता है तो वह अपने भीतर एक नई ऊर्जा, नई दृष्टि और नई संवेदनशीलता को जाग्रत करता है। इसलिए, कविता की उपस्थिति केवल साहित्य में नहीं, बल्कि जीवन के हर स्तर पर आवश्यक है।

○ ○ ○

कविता को सांस्कृतिक साक्षरता का साधन बनाने के लिए कुछ ठोस कदम उठाए जा सकते हैं, जो न केवल कविता को लोगों तक पहुँचाएँगे बल्कि उनकी सांस्कृतिक समझ को भी समृद्ध करेंगे। यह कार्य केवल साहित्यिक हलकों तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि इसे समाज के हर स्तर पर प्रभावी बनाने की जरूरत है।

अकादमिक और साहित्यिक दायरे में लिखी जाने वाली कविता आम जनता से अक्सर दूर हो जाती है। अगर कविता को सांस्कृतिक साक्षरता का माध्यम बनाना है तो उसे लोकभाषाओं, लोकगीतों और जनसामान्य की भाषा में प्रस्तुत करना होगा। जब लोग कविता को अपनी भाषा और अपने जीवन से जुड़ा हुआ पाएँगे तो वे उसमें रुचि लेंगे

और इससे उनकी सांस्कृतिक समझ भी विकसित होगी।

आज की शिक्षा व्यवस्था में कविता को केवल साहित्यिक अध्ययन तक सीमित कर दिया गया है, जबकि इसे एक सांस्कृतिक संवाद का माध्यम बनाया जा सकता है। स्कूलों और विश्वविद्यालयों में कविता को केवल काव्यशास्त्र के रूप में पढ़ाने की बजाय, उसे समाज, इतिहास और जीवन के संदर्भों में प्रस्तुत किया जाए तो छात्र उसे बेहतर समझ सकेंगे। यदि छात्रों को यह बताया जाए कि कविता केवल कल्पना नहीं, बल्कि समाज का प्रतिबिंब और सांस्कृतिक स्मृति का हिस्सा भी है, तो वे उसमें अधिक रुचि लेंगे।

रेडियो, टेलीविजन, पॉडकास्ट और सोशल मीडिया के ज़रिए कविता को व्यापक जन-समुदाय तक पहुँचाया जा सकता है। यदि कविता केवल पुस्तकों में कैद रहेगी तो वह सीमित पाठकों तक ही पहुँचेगी। लेकिन यदि उसे डिजिटल मीडिया में प्रस्तुत किया जाए, तो वह लोगों के दैनिक जीवन का हिस्सा बन सकती है। लोकल रेडियो स्टेशनों पर कविताएँ प्रसारित हों। सोशल मीडिया पर छोटी-छोटी कविताएँ और काव्य-शृंखलाएँ चलाई जाएँ।

कविता-आधारित पॉडकास्ट बनाए जाएँ, जहाँ कविताओं का अर्थ और संदर्भ समझाया जाए।

सड़कों, सार्वजनिक स्थलों और परिवहन माध्यमों में कविताओं को प्रदर्शित किया जाए। रंगमंच और नाटक का उपयोग करके कविता को जनसाधारण के करीब लाया जा सकता है। नाट्य-रूपांतरण या मंचन के माध्यम से कविता को दृश्यात्मक अनुभव में बदला जा सकता है। इससे लोग न केवल कविता को सुनेंगे बल्कि उसे जी भी सकेंगे। लोकनाट्य और परंपरागत नृत्य-कथाओं के साथ कविता को जोड़कर इसे अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

हर समाज में अलग-अलग सांस्कृतिक उत्सव होते हैं। यदि इन उत्सवों में कविता का समावेश किया जाए तो वह सांस्कृतिक साक्षरता का महत्वपूर्ण साधन बन सकती है।

विवाह, जन्म और अन्य पारिवारिक आयोजनों में कविताओं को शामिल करना चाहिए।

मेलों और महोत्सवों में कवितापाठ और कवि गोष्ठियाँ आयोजित करना चाहिए। अक्सर कविता का उपभोग केवल पढ़े-लिखे समाज तक सीमित रह जाता है। लेकिन यदि मजदूरों, किसानों, कारीगरों और श्रमिक समुदाय के बीच कविता को पहुँचाया जाए तो यह उनकी सांस्कृतिक चेतना को समृद्ध कर सकती है। इसके लिए उनकी भाषा, उनकी संवेदनाओं और उनकी समस्याओं को केंद्र में रखकर कविताएँ लिखी और प्रस्तुत की जानी चाहिए।

अगर कविता को सांस्कृतिक साक्षरता का साधन बनाना है तो उसमें समकालीन मुद्दों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करना होगा। जलवायु परिवर्तन, सामाजिक असमानता, मानवाधिकार, सांप्रदायिक सौहार्द और लैंगिक न्याय जैसे विषयों को कविता के माध्यम से प्रस्तुत किया जाए तो यह समाज में जागरूकता बढ़ाने में सहायक हो सकती है।

लोगों को कविता से जोड़ने का एक तरीका यह भी हो सकता है कि विभिन्न स्तरों पर कविता लेखन और कविता पाठ प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाएँ। स्थानीय स्तर पर समुदायों के बीच कविता लेखन की परंपरा विकसित की जाए, जिससे आमजन भी अपनी भावनाओं को व्यक्त कर सकें।

कुछ देशों में कविताओं के संग्रहालय बनाए गए हैं, जहाँ लोग जाकर विभिन्न युगों की कविताओं को पढ़ और सुन सकते हैं। भारत में भी इस तरह की पहल की जा सकती है। शहरों और गाँवों में 'कविता वीथियाँ' बनाई जा सकती हैं, जहाँ दीवारों पर कविताएँ लिखी जाएँ और वहाँ कविता-पाठ के कार्यक्रम हों।

आज के डिजिटल युग में ऑडियो और वीडियो कविताएँ अधिक प्रभावी हो सकती हैं। प्रसिद्ध कवियों की आवाज़ में उनकी कविताओं को रिकॉर्ड करके प्रसारित किया जाए और कविता पर लघु फिल्में बनाई जाएँ तो यह लोगों तक प्रभावी ढंग से पहुँच सकती है।

कविता केवल साहित्य का हिस्सा नहीं बल्कि समाज की चेतना का दर्पण है। यदि इसे सांस्कृतिक साक्षरता का साधन बनाना है तो इसे जीवन के हर क्षेत्र से जोड़ना होगा। यह तभी संभव होगा जब कविता केवल किताबों और कक्षाओं तक सीमित न रहे बल्कि लोकभाषाओं, जनसंचार माध्यमों, रंगमंच, श्रमशील समाज और समकालीन मुद्दों के माध्यम से व्यापक समाज का हिस्सा बने। जब कविता आमजन के जीवन का हिस्सा बनेगी, तभी वह सांस्कृतिक साक्षरता का वास्तविक साधन बन पाएगी।

सुनहरे बालों वाली लड़की

★ रंजना जायसवाल

रचनात्मक उपलब्धियाँ
देश की अनेक प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं अन्य विधाओं की रचनाएँ प्रकाशित। विभिन्न विधाओं की दर्जनों पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान:
अनेक संस्थाओं द्वारा साहित्यिक सम्मान

संपर्क
लाल बाग कॉलोनी
छोटी बसही
मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश
पिन - 231001
Email :ranjana1mzp@gmail.com

गगनचुंबी इमारतें, मॉल रेस्टोरेंट कितना कुछ था इस बड़े शहर में, जिसकी चकाचौंध में मेघा की आँखें भी चौधियाँ गई थी। इसीलिए तो छोटे शहर की शांति, सुकून और अपनत्व को छोड़ कर चली आई थी। आज भी उसे वह दिन याद है, जब उसने निखिल से कहा था-

"निखिल क्या रखा है इस शहर में?"

"खराबी क्या है इस शहर में?"

निखिल ने बेपरवाह होकर कहा था। मेघा ने खीझ कर कहा था-

"खराबी? एक हो तो बताऊँ। सड़कें! सड़कों में सड़क कम, गड्ढे ज्यादा हैं। समझ नहीं आता गडढों में सड़कें हैं या सड़कों में गड्ढे। एक कायदे का होटल और रेस्टोरेंट नहीं। अक्षय के भविष्य के बारे में सोचा है। इन झोलाछाप स्कूल में पढ़कर वह क्या सीखेगा।"

निखिल उसकी बात सुन मुस्कुरा दिए थे।

"इसी झोलाछाप स्कूल में पढ़े लड़के से तुमने शादी की है।"

"आप से तो बात करनी बेकार है। निखिल, माना तुम इस शहर में पैदा हुए हो। तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई, शादी-ब्याह सब यहीं हुआ, पर सोचो, क्या भविष्य है हमारा? बड़े-बड़े शहरों में बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ हैं। तुम्हारे लिए कितना अच्छा एक्सपोजर होगा। अपनी छोड़ो, अक्षय का सोचो, एक बेहतर भविष्य का हकदार तो वह है न?"

निखिल सोच में पड़ गया। बात गलत तो नहीं कही थी मेघा ने..... पर बड़े शहर के खर्चे; सुकून रोज की भागदौड़ में कहीं खो गया था। खुली हवा में सांस लेने को तरस गए थे। हवाओं में जहर घुला हुआ था। मेघा कभी-कभी सोचती क्या बड़े शहर में बसने का उसका निर्णय सही था?

रेड लाइट होते ही गाड़ियों के हुजूम की रफ्तार पर अचानक रोक लग गई। गाड़ियों के हॉर्न के शोर से मेघा चिड़चिड़ा गई।

"उफ्फ! एक तो इतना ट्रैफिक, ऊपर से रेड लाइट्स, गाड़ी रेंग रही है।"

उसने बेचैनी से अपनी ब्रांडेड घड़ी पर नजर डाली। यह घड़ी उसे बहुत पसन्द थी। निखिल बड़े चाव से उसके लिए दुबई से लाए थे। मटमैले कपड़ों और हफ्तों से गंदे जूट होते बालों के साथ हर उम्र के बच्चे रेड लाइट होते ही सड़कों पर बिखर गए। एक पल को लगा मानो अचानक गुल्लक टूट गई हो और सिक्के

बेतरतीब इधर-उधर बिखर गए हों, पर वो सिक्के नहीं थे। वो जीते-जागते हाड़-माँस के इंसान थे। सिक्के होते तो छोटे हों या बड़े, अमीर या गरीब अपनी हैसियत भूल उन्हें उठाने के लिए झुक ही जाते, पर न जाने क्यों उन्हें सड़क पर बिखरता देख कार में बैठे लोग कार का शीशा चढ़ाए वितृष्णा से सिकुड़ गए।

कहीं से इकट्ठा की गई गन्दी-सी स्प्रे बोतल में साबुन का घोल लिए वह हर गाड़ी के शीशे पर छिड़कते और एक गंदे कपड़े से रगड़-रगड़ शीशे को चमकाने की नाकाम कोशिश करते। कभी-कभी लगता वह शीशे को नहीं अपने हाथ में पकड़े धप्प पड़ चुके कपड़े से अपनी धूमिल हो चुकी किस्मत को चमकाने की कोशिश कर रहे हों।

"फिस्स-फिस्स!"

स्प्रे बोतल ने पानी में घुला हुआ साबुन कार के शीशे पर उलीच दिया। मटमैला पानी छोटे-छोटे बुलबुलों में बदल गया। बुलबुले शैतान बच्चों की तरह खिलखिलाने लगे और झट से नीचे की ओर सरक गए। एक पल को लगा मानो, नन्हें बच्चों का झुंड स्लाइडिंग झूले पर फिसल गए हों, पर अभी भी साबुन का एक बड़ा-सा बुलबुला ढीठ बच्चे की तरह डटा अपनी उपस्थिति जता रहा था। जेठ की चिलचिलाती धूप सीधी पड़ रही थी। बुलबुले में किरणों की वजह से इंद्रधनुषी रंग खिल उठे। उन मटमैले हाथों ने मटमैले कपड़ों से उस इंद्रधनुषी गुब्बार की परवाह न करते हुए तेजी से हाथ फेरा।

"ये शीशा चमका रहे हैं या उसे और गन्दा कर रहे हैं।"

निखिल ने झुंझला कर कहा। ट्रैफिक लाइट पीली हो चुकी थी। गाड़ी के शीशे पर बस दो हाथ मार वह लड़का ड्राइवर सीट के बगल में बैठे निखिल के आगे हाथ फैलाकर रिगियाने लगा। उसके चेहरे से गरीबी टपक रही थी। वह शक्ल से खानदानी गरीब लग रहा था। उसके हाथ भी उसके चेहरे की तरह काले थे।

"अंकल भूख लगी है, सुबह से कुछ नहीं खाया।"

उसने अपने पेट पर हाथ फेरते हुए कहा। उसकी आँखों से बेचारगी टपक रही थी। भूख से बिलबिलाती आँखें अंदर धँस गई थीं। मेघा के मन ने उसे कचोटा, उनके हाथ पर कुछ रख देगी तो उसका कुछ बिगड़ नहीं जाएगा। दान करने से पुण्य ही मिलता है। मेघा मन-ही-मन हिसाब लगा रही थी। पर्स में टूटे पैसे नहीं थे सिर्फ दस, बीस, सौ और पच्चास के नोट थे। उसने अपने सर को झटका दे मन में तेजी से घुमड़ते दान करने के विचारों को झटक दिया और दान करने के भूत को एक झटके से उतार दिया।

तभी लगभग दस-बारह साल की सुनहरे बालों वाली लड़की मेघा की गाड़ी के दरवाजे से आकर टिक गई।

"मम्मा! इसके बाल देखो, गोल्डन कलर कराया है। जब इतना पैसा है तो फिर भीख क्यों मांग रही है।"

अक्षय की बात सुन मेघा मुस्कुरा दी। क्या बताती, जिंदगी की धूप ने उनके जीवन के सारे रंग सोख लिए थे। उसने चेहरे पर बिखर आई अपनी लटों को बड़ी अदा के साथ अपनी उंगलियों में घुमाया। पिछले महीने ही उसने इनमें हेयर स्पा, कैरेटिन और स्ट्रेटनिग करवाई थी। कितने खूबसूरत लगने लगे थे। लगने भी थे, आखिर चौदह हजार खर्च किए थे।

सुनहरे बालों वाली लड़की उसे एकटक देख रही थी। उसके बालों को देखकर लग रहा था कि महीनों से उन बालों में तेल नहीं लगा था और न ही किसी भी तरह की कोई देखभाल हुई थी। एक बार इसी तरह की बच्ची को सड़क किनारे कपड़ा धोने वाले साबुन से रगड़-रगड़ कर बाल धोते देख उसे अपने महंगे, ब्रांडेड शैम्पू, कंडीशनर और सीरम की याद आ गई थी। इतने जतन के बाद भी उसके बाल टूट रहे थे और तेज़ी से सफेद होते जा रहे थे। न जाने कितने सारे नुस्खे, दवाइयाँ और तेल आजमाए थे पर.....

"मेघा शीशे बंद करो। कोई भरोसा नहीं इन सबका कब मोबाइल, चेन छीनकर भाग जाए।"

सुनहरे बालों वाली लड़की उसे एकटक देख रही थी। उसके बालों को देखकर लग रहा था कि महीनों से उन बालों में तेल नहीं लगा था और न ही किसी भी तरह की कोई देखभाल हुई थी। एक बार इसी तरह की बच्ची को सड़क किनारे कपड़ा धोने वाले साबुन से रगड़-रगड़ कर बाल धोते देख उसे अपने महंगे, ब्रांडेड शैम्पू, कंडीशनर और सीरम की याद आ गई थी।

वह अपनी सोच के दायरे से बाहर आ गई और निखिल की बात सुन एक पल को हड़बड़ा गई। उसका हाथ शीशा बन्द करने वाले बटन पर चला गया। वह अपनी बेवकूफी पर मुस्कुरा दी। ए.सी.की वजह से शीशा पहले से ही बन्द था। लड़की की कमर पर एक छोटा-सा बच्चा लदा हुआ था। उस बच्चे को देख न जाने क्यों मेघा को दया आ गई थी। इस चिलचिलाती धूप में उसकी आँखें मुदी जा रही थीं। आँसुओं की एक गहरी लकीर उसके चेहरे पर स्पष्ट देखी जा सकती थी।

"एक हमारे बच्चे हैं, जिनसे अपना स्कूल बैग भी नहीं उठता और एक इस बच्ची को देखिए, अपने भाई को कमर पर लादे टहल रही है।"

ड्राइवर भैया ने बैक मिरर से मेघा को देखा और मुस्कुरा दिया।

"मैडम जी! कौन-से भाई-बहन?"

"मतलब!"

"कोई जरूरी नहीं यह उसका भाई हो। यह लोग किराए पर बच्चे ले लेते हैं।"

अब की चौकने की बारी निखिल की थी।

"किराए पर बच्चे? कौन देगा इन्हें.....?"

"इनके आस-पास अपने जैसे ही लोग रहते हैं, जो आदमी काम पर नहीं जाता, वह उनके बच्चों को अपने कमर पर लादे ऐसे ही चौराहों पर टहलता रहता है।"

"बच्चे, अनजान लोगों को अपने बच्चे कैसे दे सकता है?"

मेघा की आँखों से ममत्व टपक रहा था। मेघा ने अक्षय के सिर पर हाथ फिराया और अपने सीने से चिपका लिया।

"मैडम भूख और गरीबी अपना-पराया नहीं देखती। जो लोग बच्चों को किराए पर लेते हैं, वे कमाई का कुछ हिस्सा बच्चे के घरवालों को भी दे देते हैं। वैसे भी ये सब अगल-बगल ही तो रहते हैं। बच्चे भी उन्हें अच्छे से पहचानते हैं। फिर दिक्कत किस बात की?"

मेघा आश्चर्य से ड्राइवर को देखती रह गई। नैतिकता कहीं दूर कराह रही थी। जिस बच्चे को देख उसे दया आ रही थी, अब वह भाव भाप बनकर उड़ चुका था। मेघा का नजरिया अचानक बदल गया। जो बच्चा अभी तक मासूम और हालात का मारा नज़र आ रहा था, वह अचानक पैसा कमाने की मशीन नज़र आने लगा था।

मेघा ने सुनहरे बालों वाली लड़की को आगे बढ़ने का इशारा किया, पर वह वैसे ही खड़ी रही। मेघा उसकी इस हरकत पर खीझ गई।

"कितनी ढीठ है?" उसने कसमसाकर कहा। उसने अपने पर्स को खोला और जेब में एक अदद सिक्का टटोलने की नाकाम कोशिश की। एक-दो-तीन.... तीनों चेन खोलने के बाद कहीं भी सिक्का नहीं मिला। सामान जरूर उलट-पुलट हो गया। वह झुंझला गई। सुनहरे बालों वाली लड़की बड़ी उम्मीद से उसे देख रही थी। मेघा ने कार की बगल वाली सीट पर पर्स को जोर से पटका और तेज आवाज़ में फटकारते हुए कहा- "कुछ नहीं है, आगे बढ़ो।"

सुनहरे बालों वाली लड़की के होंठ बुदबुदाए, वो शायद कुछ कह रही थी। मेघा ने हल्के-से शीशे को खोला।

"क्या है!क्या चाहिए तुम्हें?"

"मैडम! अपनी घड़ी दे दो।"

"ये?" मेघा ने आश्चर्य और हिकारत भरी नजरों से उसकी ओर देखा।

"हिम्मत तो देखो इन सब की!"

उसने मन ही मन बुदबुदाया। उसने अपने गुस्से पर काबू करते हुए कहा- "क्या करोगी? समय भी देखना आता है?"

उस लड़की ने मुस्कुरा कर उसकी ओर देखा और आगे बढ़ गई। उसकी मुस्कुराहट में ऐसा कुछ था, जिसने मेघा को सोचने पर मजबूर कर दिया। तब तक चौराहे की ट्रैफिक लाइट हरी हो गई और उसकी गाड़ी आगे बढ़ गई। मेघा सोच रही थी। सुनहरे बालों वाली लड़की का वर्तमान तो सामने ही दिख रहा था। भविष्य इससे कुछ अलग नहीं था और रहा अतीत की बात तो वह उसके वर्तमान की तरह ही खुरदरा था।

मेघा विचारों के सागर में डूब उतरा रही थी। आखिर वह लड़की उसकी घड़ी क्यों माँग रही थी? शायद उसे घड़ी सुंदर लगी थी और वह उसे पहनना चाहती थी या फिर शायद वह अपना वक्त बदलना चाहती थी, जिसके काँटे ठहर गए थे, जिसकी चुभन उसे टीस देती रहती थी। शायद उन काँटों के ठहरने के साथ उसकी जिंदगी भी कहीं-न-कहीं ठहर गई थी। क्या वक्त को सचमुच कोई बदल पाया है? क्या कलाई में घड़ी बाँध भर लेने से वक्त बंध पाया है? सुनहरे बालों वाली लड़की न जाने कितने सवालों के साथ मेघा को छोड़ ओझल हो चुकी थी। शायद कुछ सवालों के जवाब नहीं होते। शायद.....।

❁❁

गलत ट्रैक पर चले गये गालिबान

जन्म : 05अक्टूबर, 1959, रीवा (म0प्र0)
सृजन : दो उपन्यास, लगभग डेढ़ दर्जन कहानी संग्रह, समीक्षा आलेख, व्यंग्य, संस्मरण, यात्रा-वृतांत प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।
पुरस्कार : मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी का अखिल भारतीय गजानन माधव मुक्ति बोध पुरस्कार, मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी का प्रादेशिक सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कार सहित लगभग डेढ़ दर्जन पुरस्कार/सम्मान

सम्पर्क:
जीवन विहार अपार्टमेन्ट
फ्लैट नं0 7, द्वितीय तल
महेश्वरी स्वीट्स के पीछे
रीवा रोड, सतना (म. प्र.) -485001
मोबाइल: 08269895950
email: sushmamunindra@gmail.com

★ सुषमा मुनीन्द्र

दाम्पत्य में तिरोहित होने जा रहा प्रत्येक जोड़ा सोचता है अथवा एक इस जोड़े ने सोचा इसका प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता। दाम्पत्य में दाखिल हो रही गाथा बड़प्पन से लैस है-अपनी तीन बड़ी बहनों की तरह दाम्पत्य को चलताऊ सा नहीं होने देगी। तीन में दो बहनें इस कदर हताश बल्कि हताहत हैं कि उनमें वीरता होती तो तलाक ले डालतीं। साफ झलकता है बहनें, मां - पिता जी की सुध-बुध लेने नहीं, पति निंदा का लक्ष्य लिए कोठार (मायके) आती हैं। अम्मा दत्त चित्त हो दामादों के अवगुण सुनती हैं लेकिन गाथा को जीजा त्रय इतने अवगुणी नहीं लगते जितना सहोदरायें साबित करना चाहती हैं। उसने तभी इरादा कर लिया था अपने दाम्पत्य को ऐसा चलताऊ नहीं होने देगी कि रजामंदी दिखाई न दे। अपनी खूबी से सामान्य हैसियत वाले घर को ऐसा बना देगी जब एक करीना दिखाई देगा। वह कम हैसियत वाले परिवार की अंतिम उपज है। बाप राम आलीशान दहेज नहीं देंगे जिसके बूते लड़की पति को मातहत बना कर चलती है।

उधर जनक भी बड़प्पन से लैस था। गाथा की पहली झलक देख कर बेकरार हो गया - जाहिर तौर पर पत्नी को लेकर कोई कल्पना नहीं की है। मनसा, वाचा, कर्मणा को संयुक्त कर गाथा को अपनी कल्पना बनाना है। माहौल को जीवन भर ऐसा मजेदार बनाए रखना होगा कि इस लाली दुल्हनिया को अपन की स्थानीय छोटी फैक्टरी की छोटी नौकरी और दो छोटे कमरे वाला छोटा किराए का मकान छोटा न लगे। अम्मा-बाबू पता नहीं क्यों लड़ते हैं ? उन मुद्दों पर भी लड़ते हैं जिन मुद्दों पर सहमत होना अधिक स्वाभाविक होना चाहिए।

जैसा कि आमतौर पर होता है, दाम्पत्य का श्री गणेश सकुशल अवस्था में हुआ। नयेपन का नयापन, नयेपन की खुमारी, नयेपन का संकोच, नयेपन का रोमांच। जनपद में रहते हुये तीसरा साल है, पर जनक को जनपद, घर, दफ्तर, रास्ते ऐसे चमकदार न लगते थे जैसे गाथा की सोहबत में लग रहे हैं। सब कुछ सम्पूर्ण और सुहाना है। आमतौर पर रुष्ट सा दिखने वाला जनक का चेहरा उपकृत सा दिखने लगा है -

''गाथा, लड़कियाँ बहुत सहती हैं। अपने घर, परिवार, शहर को छोड़कर दूसरे घर, परिवार, शहर को अपनाती हैं। मुझे तो दूसरे का बाथरूम यूज करने में दिक्कत होती है, घर में रहने में बहुत दिक्कत होगी।''

''सामाजिक व्यवस्था है। लड़कियों का अरमान होता है, शादी हो। अपना घर हो।''

''ऐसा है तो मैं खुद को थोड़ा बरी हुआ-सा पा रहा हूँ।''

दाम्पत्य के प्रथम वर्ष में इस कदर त्याग, समर्पण, महानता, उपकार का दौर चलता है कि प्रथम वर्ष को सद्‌भावना वर्ष घोषित किया जाना चाहिए। गाथा और जनक एक-दूजे को प्रभावित करने पर उतारू। प्रभावित कर रहे हैं, हो रहे हैं। बल्कि एक-दूजे को प्रभावित उतना नहीं कर रहे हैं जितना अपनी इमेज को उत्कृष्ट बनाना चाहते हैं। कोशिश रहती है गलतियाँ, बेवकूफियाँ न करें। दूसरे की गलतियों, बेवकूफियों पर ध्यान न दें। ध्यान चला जाए तो दिल से न लगाएँ। जनक को गाथा का चुप रहना अच्छा लग रहा है, गाथा को जनक का बहुत बोलना। जनक को गाथा का करीना और शालीनता सुहा रही है, गाथा को जनक की लापरवाही और फिज़ूलखर्ची। जनक नहाने के बाद स्नानगृह में शैम्पू का फेन छोड़ देता है। गाथा बहा देती। गीला तौलिया बिस्तर पर फेंक देता। गाथा धूप में बगरा देती।

उम्दा किस्म के कोआर्डिनेशन के साथ दाम्पत्य का प्रथम वर्ष जो वस्तुतः त्याग वर्ष माना जाना चाहिये, सम्पन्न हुआ। दूसरे वर्ष के जोर पकड़ते ही नयेपन का नयापन काफी हद तक कम हो गया। दोनों को एक-दूसरे की वो कमियाँ, खराबियाँ, गलतियां दिखाई देने लगीं जो अब तक दिखाई नहीं दे रही थीं। तरीवाले मसालेदार भोजन के प्रलोभी जनक को गाथा द्वारा रचित सादा भोजन अत्याचार की तरह लगने लगा।

2

पहने हुए पैजामे को दो गोले की शक्ल में भूमि पर उतार, खूँटी में टँगा पतलून पहन कर जनक फैक्टरी चला जाता । पैजामे की पोजीशन देख मुस्कुराती गाथा पैजामा तहा देती। जनक फैक्टरी से लौट कर पतलून खूँटी में टाँगता और दो गोलों के आकार में धराशायी पड़े पैजामे के गोलों में एक-एक पैर रख कर पैजामा पहन लेता था। अब पैजामे को यथास्थिति न पाकर लजाता कम, हैरान अधिक होता ''पैजामा जमीन पर न मिले तो मुझे लगता है किसी दूसरे सज्जन के घर में घुस आया हूँ। गाथा, पड़ा रहने दिया करो। मैं हॉस्टल में यही करता था।''

''यह हॉस्टल नहीं घर है।''

उम्दा किस्म के कोआर्डिनेशन के साथ दाम्पत्य का प्रथम वर्ष जो वस्तुत: त्याग वर्ष माना जाना चाहिए, सम्पन्न हुआ। दूसरे वर्ष के जोर पकड़ते ही नएपन का नयापन काफी हद तक कम हो गया। दोनों को एक-दूसरे की वो कमियाँ, खराबियाँ, गलतियाँ दिखाई देने लगीं जो अब तक दिखाई नहीं दे रही थीं। तरीवाले मसालेदार भोजन के प्रलोभी जनक को गाथा द्वारा रचित सादा भोजन अत्याचार की तरह लगने लगा। दाम्पत्य को अक्षत रखने के लिए वह अपने गाँव में अक्सर पधारने वाले एक तपसी महाराज के फार्म्यूले - 'एक थाली में खाने से पति-पत्नी में प्रेम बढ़ता है' का डे वन से पालन करते हुए गाथा के साथ एक थाली में खा रहा है लेकिन अब लगने लगा है, थाली में रखा खाना गोबर जैसा हो तो प्रेम नहीं मतभेद बढ़ता है। बाबू, भोजन में इतना नुक्स निकालते थे कि सीखते-सीखते अम्मा गुणी रसोइया बन गई, खाते-खाते वह स्वादपारखी बन गया है। जान पड़ता है गाथा ने कोठार में खाना बनाने का अभ्यास नहीं किया है। पापड़, अचार या सलाद परोसना जानती ही नहीं। इसे सोचना चाहिए, दिनचर्या को सुचारु रखने के लिए दो वक्त का स्वादिष्ट भोजन कितना जरूरी है। यदि गोबर जैसे स्वाद वाला खाना खाता रहा तो एक दिन तत्काल प्रभाव से नौकरी से रफा-दफा कर दिया जाएगा। गाथा से कहना पड़ेगा, कोई चेतना सम्पन्न बड़े अनुसंधान के बाद कह गया होगा, 'पति के दिल का रास्ता पेट से होकर जाता है।' इस पथ को पहचान लो वरना दाम्पत्य में गफलत बहुत होती है। वह अक्सर बेगैरत सा चेहरा बना कर खाता है कि गाथा उसकी अरुचि समझ ले लेकिन मूढ़मती वैसे तो चुप रहती है, खाते समय नियमपूर्वक पूछती है, 'खाना कैसा बना है ?' विरक्त मुँह बनाए कहना पड़ता है, 'ठीक बना है, तभी न खा रहा हूँ।' गाथा इस प्रतिक्रिया पर पता नहीं क्या सोचती है। इतना चुप रहती है कि सुराग नहीं मिलता कि कुछ सोचती है। वैसे वह

सिर्फ एक वर्ष पुरानी पत्नी है। उसकी त्रुटि बताना मानवीय नहीं लग रहा है। आलोचना सुन कह सकती है -'प्यार का बुखार उतर गया मियाँ?' समझाना पड़ेगा, न उतरे इसीलिए थोड़ा निर्देशित करना है। पति-पत्नी एक-दूसरे के अनुरूप बनें, एक-दूसरे के हित, रुचि, आराम का ख्याल रखें, यह गलत अथवा अनोखी बात नहीं है। महिलाओं को पति, परिवार, परिजन के मुताबिक खुद को बदलना चाहिए। यह बदलना न खुद पर अत्याचार है, न पति पर उपकार। सुयोग देखकर गाथा से इस संदर्भ में बात करनी है। वक्त रहते विरोध न करो तो विरोध, विद्रोह बन जाता है। त्रुटि बताना, बलवा करना नहीं है। इस तरह निर्देशित करेगा जो आपत्ति जैसा नहीं, इसरार जैसा लगेगा।

जनक ने कूट तरीका अपनाया -

"गाथा, मेरी कमियाँ बताओ।"

''सब ठीक है।''

''मतलब कुछ है, जो ठीक नहीं है।''

''सब ठीक है।''

''तुम अपनी कोई कमी बताओ।''

अपने देखे तो त्रुटिरहित तरीके से रह रही है।

3

''मुझे नहीं मालूम। तुम बताओ।''

''हां। एक-दूसरे की कमी न बताने का मतलब होगा, हम एक-दूसरे को जागरुक नहीं करना चाहते। उदासीन रहना चाहते हैं। उदासीन रहने का अर्थ नजर अंदाज करना होता है। परिष्कार और परिहार हमें ऊँचा उठाते हैं। मैं चाहता हूँ तुम ऐसी प्रजेन्टेबल बनो कि लोग सराहना करें।''

''कमी बताओ।''

''इतना चुप रहती हो। बात करना सीखो।''

''मैं बहुत नहीं बोलती।''

''मेरे मित्र आते हैं, तुम चुप रहती हो।''

''क्या बोला करूँ?''

''पूछना चाहिए अकेले आए हैं, वाइफ को क्यों नहीं लाए?''

''पूछ लूँगी।''

''क्या?''

''वाइफ को क्यों नहीं लाए ?''

''मेरा चार-पाँच मित्रों का ग्रुप है। हम लोग शनिवार या रविवार को किसी एक के घर मिलते हैं। भाभियाँ अच्छा खाना खिलाती हैं। अच्छा विमर्श करती हैं। माहौल बनता है। तुम वही हाँ-हूँ... मित्रों को लगता है तुम ग्रुप में ईजी नहीं रहती हो। घमण्डी हो या उन्हें अपने स्तर का नहीं मानती हो। मुरारी कहता है-जनक, तुम गूँगी गुड़िया को ब्याह लाए हो।''

''लगता है जत्था (मित्र समूह को गाथा जत्था कहती है) हर किसी को टाइटिल देता है। मैं गूँगी गुड़िया जबकि सुवास कहता है-जनक, तुम इतना बोलते हो जैसे सियार हुआ-हुआ करने लगे तो फिर चुप नहीं होता।''

''हम लोग एक-दूसरे को बोर करते रहते हैं लेकिन तुम इतना चुप रहती हो। अम्मा मोबाइल पर मुझसे पूछती हैं-इतना चुप रहती है, लगता है खुश नहीं है।''

''मैं खुश हूँ।''

''इतना चुप रहती हो। कैसे पता चले खुश हो ? अच्छा बोलना, विमर्श करना स्मार्टनेस है।''

''जत्था दफ्तर की बुराई करता है, भाभियाँ अपनी पीठ ढाँकती हैं, आज ये रेसिपी ट्राई की। ये स्मार्टनेस है ?''

''भाभियाँ अच्छा खाना बनाती हैं, खुश होकर खिलाती हैं।''

''तुमने कभी नहीं कहा, मैं अच्छा खाना बनाती हूँ।''

''सादा बनाती हो। मुझे चटपटा पसंद है।''

4

''तेल, मिर्च सेहत खराब करते हैं।''

''बाबू, हट्टे-कट्टे, मजबूत हैं।''

''मेरे पिता जी सादा खाने की सलाह देते हैं।''

''क्योंकि उन्हें डायबिटीज, हाई बी0पी0 कई रोग हैं। चटपटा खाने से उनकी तबियत नासाज हो जाती है, लेकिन तुम सादे भोजन का प्रयोग मुझ पर मत करो।''

''मैं प्रयोगधर्मी नहीं हूँ।''

''अच्छा खाना बनाना कठिन नहीं है। सीख लोगी। मेरा वश चले तो मैं भी सीख लूँ।''

''मेरा वश चले तो खर्राटे लेना सीख लूँ।''

जनक विमूढ़ हो गया। समझौते पर आना चाहता है लेकिन यह खर्राटे लेने जैसा वैमनस्य दिखाना चाहती है।

''अपना बोरा-बिस्तरा बैठक में समेट ले जाऊँगा।''

''मैं समेट लूँ लेकिन माचिस

की डिबिया जैसे छोटे बैठक में चार कुर्सियाँ मुश्किल से समाई हैं, खटिया नहीं समाएगी।''

''खटिया किचन में रख लो।''

''चूहे और झींगूर तादाद में हैं। तुम्हारे खर्राटे और झींगूर की चिंचियार में फर्क नहीं है।''

''मतलब ?''

''हुडुक्का (हुक्का जैसी गड़गड़ की आवाज करते खर्राटे) बजाते हो। कई रातों से नहीं सोई।''

''मैं खर्राटे नहीं लेता।''

''नींद में नहीं जान पाते हो। कई बार मैं पैंताने सिर करके सोती हूँ।''

''किसी दिन मेरी नींद खुल गई थी। देखता हूँ सराहने की ओर आपके चरण हैं। भारतीय संस्कृति का कुछ ख्याल करो। पति परमेश्वर को पत्नी का पैर धोखे से भी लग जाए तो पत्नी का रौरव नरक में जाना तय है।''

''मैं फर्जी बातों को नहीं मानती।''

''मैंने जरा सी आलोचना क्या कर दी, तुम बात का बतंगड़ बनाने लगी।''

''बतंगड़ न बने इसलिए ध्यान रखो, गीला तौलिया बिस्तर पर, बाथरूम में झाग न रहे। एक बार मैं झाग में फिसल गई थीं। कमर चटकते बची। जूते, कपड़े, बेल्ट कुछ भी सही जगह पर नहीं रखते हो। बड़ी भारी आलमारी खरीद लाओ। तुम्हारी सामग्री उसमें ठूँस कर ताला जड़ दूँ।''

''आलमारी। ख्वाइशें बताती चलो। सेलरी कम है लेकिन गुलाम पूरी करने की कोशिश करेगा।''

''सेलरी कम है लेकिन जत्थे के साथ महफिल सजानी है, पिकनिक मनानी है। थोड़ा बचत करो।''

5

''नुस्खा बता दो।''

''मुझे एक नया पैसा नहीं देते, नुस्खा कैसे बताऊँ ? जान पड़ता है पूरी सेलरी वॉलेट में ठूँसे रहते हो। खूँटी में टँगे तुम्हारे पैन्ट की मुझे निगरानी करनी पड़ती है। किसी दिन बूटन (काम वाली बाई) जेब में रखे वॉलेट से सेलरी उड़ा लेगी।''

''उड़ा ले। तुम्हारे भरण-पोषण में कमी न आने दूँगा।''

''भरण-पोषण की बात न करना। कुकिंग गैस सिलेण्डर की होम डिलीवरी हुई। मुश्किल से पेमेन्ट कर सकी।''

''मैं पैसे नहीं देता तो पेमेन्ट कैसे किया ?''

''चोरी किया ...वॉलेट से सौ-पचास रुपए चुराने जैसी गिरी हरकत करनी पड़ती है, लेकिन तुम्हें उम्दा खाना चाहिए। मैं ..।''

''माफ करो देवी। दो शब्द कह क्या दिए, तुमने मोर्चा खोल दिया।''

जनक होश खो देगा। अनुमान नहीं था, यह उसकी कमियों, खराबियों, गलतियों पर पैनी नजर रखती है। ऐसी कमियाँ गिना रही है जिनके लिए सोचता था, उसमें हैं ही नहीं। वह इसरार कर रहा था, यह शीलवती कन्या तकरार पर उतर आई। ऐसे अपरिचित से कारण बता रही है, जिन्हें गलतियां बिल्कुल नहीं कहा जा सकता। इसके साथ इतनी औपचारिकता नहीं बरतनी चाहिए थी। औपचारिकता अब तो बेवकूफी बल्कि ढोंग लग रही है। क्या पता था, जिस कंठ में मधु भरा रहता था, उस कंठ से धतूरे जैसा स्वर निकालेगी। स्थिति का लाभ उठाने में माहिर लगती है। न निर्देश मानेगी, न सलाह सुनेगी। गीला तौलिया बगराने, झाग बहाने में सुकुमारी की कमर पिराती है। दाम्पत्य में बेवकूफी के अलावा कुछ नहीं रखा। जोर का झटका धीरे से नहीं, जोर से लगा है।

झटके पर झटका। फैक्टरी ले जाने के लिए गाथा ने असावधानीवश लंच बाक्स में पराठों के साथ लवण रहित सब्जी रख अगला झटका दे दिया। जनक ने इसे षडयंत्र माना। फैक्टरी से लौट कर लंच बॉक्स गाथा के सम्मुख उलट दिया -

''टी0वी0 पर पुरानी फिल्में देखने से फुर्सत मिले तो सब्जी में नमक डालने का होश रहे।''

''मैंने सब्जी खाई तब पता चला, नमक डालना भूल गई हूँ।''

''अच्छा खाना न मिले तो मेरी बुद्धि काम नहीं करती।''

''हाथ-मुँह धो लो। चाय लाती हूँ।''

तिर्यक तेवर में जनक स्नान गृह में चला गया। झुककर बाल्टी से पानी लेते हुए शर्ट की ऊपरी जेब में रखा सेल फोन बाल्टी में गिर गया। सराबोर मोबाइल लिए रसोई में चाय बना रही गाथा के सम्मुख पहुँचा -

''अच्छा खाना न मिले तो मेरी बुद्धि काम नहीं करती। सेल फोन पानी में गिर गया।''

''नमक का ध्यान रखूँगी।''

''नमक का ध्यान रखने से मेरा सेल फोन रिपेयर नहीं हो जाएगा।''

6

वह बड़प्पन तिरोहित हो गया, जिससे यह जुगल जोड़ी लैस थी।

दोनों एक-दूजे की त्रुटियाँ ढूँढ़ते पाए जाते हैं। तकरार का सिलसिला थम नहीं रहा है। कितनी बार जंग हुई, कितनी बार जनक ने हंगामा किया, गाथा ने क्रंदन, इसका मुकम्मल प्रमाण नहीं मिलता। क्रंदन करती पराजित गाथा बिस्तर पर पड़ी रहती -

जनक वैसा नहीं रहा जैसा ओपनिंग में था। वेदना होती है, मैं बेगैरत इंसान पर न्योछावर हुई। मुझे एक थाली में खाना असहज करता है फिर भी थाली शेयर करती हूँ। यह बड़े-बड़े कौर जल्दी-जल्दी चबाते हुए मेरे हिस्से का काफी कुछ उदरस्थ कर लेता है, लेकिन मैं चुप रहती हूँ। शालीनतापूर्वक छोटे-छोटे कौर खाते हुए अक्सर भूखी रह जाती हूँ, लेकिन इसे उम्दा भोजन चाहिए। मैं क्या करूँ, कैसे रहूँ, मेरी कमियाँ बता कर पर्यवेक्षक बना जा रहा है। मैं अपनी कुलीनता में रहना चाहती हूँ, यह मेरी छवि बिगाड़ रहा है। विवश होकर मुझे इसकी त्रुटियाँ बतानी पड़ीं। अब स्थिति यह है मैं इसकी त्रुटियाँ ढूँढ़ने में वक्त बर्बाद करने लगी हूँ। इसकी त्रुटि ढूँढ़ते हुए खुद चार त्रुटियाँ कर डालती हूँ। नहीं सोचा था, इतना लाचार हो जाऊँगी। दाम्पत्य के जोखिम पहचान में आने लगे हैं। नक्षत्र न बदले तो दाम्पत्य को चलताऊ सा होना ही है। वक्त ऐसा आ गया है, जब बात-बात पर तलाक हो रहे हैं। ऐसा होता है तो सहोदराएँ मंगल मनाएँगी - गाथा बड़ा संकल्प करती थी। तलाक लेकर हमसे दुइ कदम आगे निकल गई। अब ? कुछ सोचना होगा। चिंतन से रास्ते निकलते हैं। मुझे लाचार नहीं कल्पनाशील बनना चाहिए। छोटी-छोटी लड़ाइयाँ जनक की तन्मयता नष्ट कर देंगी। मोबाइल खराब हुआ है, आगे न जाने क्या-क्या खराब होगा। प्राइवेट बॉडी में जॉब करता है। ध्यानपूर्वक काम न करेगा तो निकाल दिया जाएगा। अभी अक्सर भूखी रहती हूँ, तब दाना नसीब न होगा। मैं समन्वय बनाऊँगी। समन्वय आसान और सुविधाजनक नहीं है तो कठिन और असुविधाजनक भी नहीं है। सच पूँछो तो चटपटा भोजन पसंद करना गुनाह नहीं है। पिता जी घर के मुखिया हैं। कोठार में उनकी पसंद का खाना बनाना पड़ता है। इस घर का मुखिया जनक है। मुझे उसकी पसंद को प्राथमिकता और महत्त्व देना चाहिए। वह वाचाल है, लेकिन इसे खता नहीं कहा जा सकता। सच यह है, वह उतना नहीं बोलता जितना मैं चुप रहती हूँ। गूँगी गुड़िया-जत्थे ने सही टाइटिल दिया है। इतना कम बोलती हूँ कि महफिल में असामाजिक तत्व की तरह लगती हूँ। बोलना चाहती हूँ लेकिन मौके पर उपयुक्त शब्द नहीं मिलते। दिन भर पुरानी फिल्में देखती पड़ी रहती हूँ। पुरानी फिल्में अर्हता नहीं बढ़ाएँगी। ज्ञान बढ़ाने वाले कार्यक्रम देखूँगी। विमर्श करना सीखूँगी। अपने व्यवहार में संशोधन करूँगी। ऐसी चेष्टा करनी होगी जो प्रयत्नपूर्वक किया जा रहा उपक्रम नहीं, स्वाभाविक लगे। यह त्याग नहीं, एक अच्छा तरीका है। मेरी कुलीनता वापस लौटेगी, साथ ही जनक में ओपनिंग वाला बड़प्पन थोड़ा भी बचा होगा तो ग्लानि के तड़ाग में डूब जाएगा कि सकारात्मक भाव उसने क्यों नहीं दिखाया ?

खुद को आमूल-चूल बदल कर गाथा ने जनक को एक झटका और दे दिया। जनक को चिंतक की मुद्रा में आना पड़ा- गाथा न्यूज चैनल देखती पाई जाती है। रसोई में नाना विध प्रयोग कर चटपटे व्यंजन बनाती है। महफिल जमाने के लिए वीक एण्ड पर जत्थे को आमंत्रित करती है। जत्थे से इस तरह वार्ता करती है मानो दिन भर अच्छे वक्तव्य की तैयारी में लगी थी। जत्था उसकी ओर केन्द्रित होता जा रहा है। शक होता है, लाइन मार रहा है। मैं बोलना चाहता हूँ तो जत्था दिल्लगी करता है-गाथा से मिलने आए हैं, तुम्हें झेलने नहीं। गीला तौलिया बिस्तर पर फेंक, बाथरूम में झाग छोड़ मैं घर का नजारा बिगाड़ता हूँ, यह त्यागमयी मुद्रा बनाए व्यवस्था बना देती है। मुझे अंदाज है एक थाली में खाते हुए इसे सहूलियत नहीं लगती लेकिन चेहरे के भाव यूँ बनाए रखती है, मानो धन्य हो रही है। पता नहीं क्यों लगने लगा है, उसने बाजी मार ली है। मैं हार रहा हूँ। पराजय की बात न भी हो लेकिन पछतावा सा हो रहा है। पता नहीं क्यों गाथा का तरीका उचित लगने लगा है। सादा खाना उत्तम होता है। छुट्टी-छपाटी पर कुछ स्पेशल बने, वह अलग बात है। जब से रेसिपी ट्राई करने लगी है, रसोई में एक न एक सामग्री का टोटा पड़ा रहता है। जत्थे के लिए कड़ाह भर बनाने में मेरा अल्प वेतन होम हो रहा है। तरीवाला भोजन मैं लपलपा कर खाता हूँ, जबकि मिर्च की अधिकता से गाथा

हिचकती है या बार-बार पानी पीती है। हिचकती है लेकिन बोलना जारी रखती है। सच कहूँ तो चुप रहती थी, तब स्वाभाविक लगती थी। खूब बोलते हुए बनावटी लगती है। दरअसल चुप रहना उसका स्वभाव है। संस्थागत पारिवारिक अनुशासन से आई है। उसके पिता जी लड़कियों का लड़कों से मेल-जोल नहीं होने देते थे। उसकी चुप रहने की आदत हो गई। सच यह भी है, गाथा को बोलने का मौका नहीं देता हूँ। इतना बोलता हूँ कि बीच में किसी का बोलना दखल की तरह लगता है। इमीजिएट बॉस टोक देते हैं, 'जनक, कम बोलो, काम अधिक करो। बातूनी लोग अक्सर ऐसी बातें करते हैं, जो किसी का भला नहीं करती।' जत्था अलग दिल्लगी करता है, 'जनक, बहुत बोलते हुए, तुम बेहतरीन बेवकूफ लगते हो। एक दिन खूब बोलते हुए खुद को आईने में देखो, कितने बेवकूफ लगते हो।' सचमुच बेवकूफ हूँ। उत्तम व्यवहार कर रही गाथा को इतना दखल दिया कि उसने व्यवहार में मेरा असर पैदा कर लिया है। वाचाल हो रही है। रोज नई-नई जरूरतें बता रही है। बचत करने की सलाह देती थी, अब सेलरी उड़ा कर दम लेगी। तो अब ? लगता है बात कुछ नहीं है, बस इतनी है कि बाबू की तरह पुरुष अहम् से कंठ तक भरा हुआ हूँ। अम्मा, खुद को बाबू के अनुकूल बनाती गई, बाबू रत्तीभर न झुके। सोचना होगा, अहम् दाम्पत्य का सत्यानाश कर देता है। गीला तौलिया खूँटी में टँगा दूँ, झाग बहा दूँ तो दफ्तर के लिए विलम्ब न हो जाएगा। किसी दिन कोई रपट गया तो हाथ-गोड़ खण्डित हो जाएँगे। प्रत्येक व्यक्ति की अलग प्रकृति और स्वाभाविकता होती है। प्रकृति बदलते हुए गाथा सचमुच टार्चर से गुजरी होगी। मैं खुद को बदलूँगा ताकि वह अपनी स्वाभाविकता को वापस पा ले। आखिर, दाम्पत्य साझा भागेदारी है। प्रयास, प्रयोजन, परिणाम साझा होना चाहिए। मैं नम्र बनूँगा वरना गाथा को अहंकार हो जाएगा कि दाम्पत्य उसके प्रयास से गतिमान है। तो अब ? गाथा से दूर नहीं गया हूँ कि करीब आऊँ, फिर भी और करीब आने का जतन करूँगा। खुद को बदलूँगा। वह तो बदल ही गई है। दो कदम चलूँगा। वह तो चल चुकी है। गाथा कि तरह खुद को खुफिया तरीके से यूँ बदलूँगा कि मोहतरमा को खबर न होगी। मेरे व्यवहार पर हतप्रभ हो न हो, खुश तब भी होगी।

''गाथा खाना लगाओ।''

गाथा एक थाली में परोस लाई।

''कटहल की सब्जी तुम्हें पसंद है। देखो कैसी बनी है।''

''एक थाली में न परोसा करो।''

''प्रेम बढ़ता है।''

''लालच बढ़ता है। अंदाज नहीं मिलता कौन अधिक खा गया, कौन कम। मैं गले तक ठूँस लेता हूँ।''

''खूब खाओ। चटपटा बनाने लगी हूँ।''

''सादा बनाओ। सेहत ठीक रहती है।''

8

''मुझे अच्छा लग रहा है। पता नहीं था, अच्छा खाना बनाना और खाना इतना संतोष देता है। कल इतवार है। जत्थे को लंच पर बुलाओ। दाल, बाटी, चूरमा बनाऊँगी।''

''बेकार थकोगी।''

''वीक एंड पर एनज्वॉय करो। तुम्हारी वर्किंग एफीशियेन्सी बढ़ेगी।''

''रेस्ट के लिए एक इतवार ही तो मिलता है। दोपहर में टी.वी. पर पुरानी फिल्म देखेंगे।''

''मुझे न्यूज चैनल पसंद है। बहुत जानकारी मिलती है। किसी भी टॉपिक पर बोल सकती हूँ।''

जनक ने गाथा को देखा।

गाथा ने जनक को देखा।

समन्वय पर आते-आते गलत ट्रैक पर चले गए गालिबान। साझे प्रयास, साझे प्रयोजन का परिणाम कितना विपरीत। परिणाम पर हँसना अथवा लड़ना स्वाभाविक होता, पर दम्पति इतने हतप्रभ हुए कि न हँसने की सुध आई न लड़ाई की।

❋❋

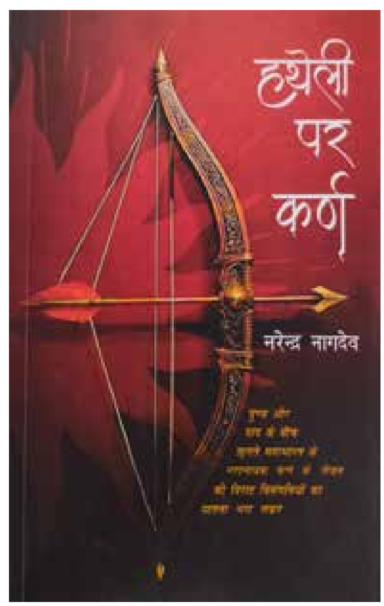

प्रश्नचिह्न

* चाँदनी समर

नाम – *चाँदनी समर*
प्रकाशित कृतियाँ – *ग़ज़ल, कविता, गीत विधा में लेखन, वेदना की उड़ान (उपन्यास), फ़िल्म लेखन व निर्माण ।*
सम्मान – *साहित्य सम्मान सहित कई राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त*
संप्रति – *शिक्षिका*
सम्पर्क
मीनापुर, मुजफ्फरपुर, बिहार
मोबाइल 9905120900
chandnisamer1@gmail.com

जबसे वो मार्केट से लौटी है, उसका मन अत्यंत विचलित है। उस बाज़ारू औरत की आँखों की चमक और चेहरे का तेज उसे परेशान कर रहा था। उस पर उसके पति की चुराती हुई नजर। भला क्या संबंध है इन दोनों में, उसके पति तो ऐसे नहीं हैं। फिर उन्होंने नज़र क्यों चुराई? यही प्रश्न मन में खलबली मचा रहा था कि वह चैन से एक जगह बैठ नहीं पा रही थी। वो स्त्री, जिसकी तरफ वह देखना भी पसंद नहीं करती, बस में जब भी उससे सामना होता, संस्कृति का मन घृणा से भर उठता।

'कैसे इठला-इठला कर कॉन्ट्रेक्टर से बात करती है। कपड़ों का तो बिल्कुल भी सलीका नहीं। जानबूझकर पल्लू समेटे रहती है।' संस्कृति की नज़रों में उसके भड़कीले कपड़े और उसका अजीब व्यवहार रोज़ चुभता। संस्कृति तो चाहती थी कि उस औरत से सामना ही न हो उसका। मग़र अक्सर स्कूल जाते समय बस में टकरा जाती। आज सब्जी मंडी में उसे देखकर संस्कृति विचलित हो गई। उसके पति को देखकर कैसे मुस्कुरा रही थी, जैसे जानती हो उन्हें। और रमेश.. उसने क्यों नज़र चुराई? क्या वो भी जानते हैं उसे?

एक तो बात वैसे ही संशयमयी थी, ऊपर से स्त्री का स्वभाव। वह अपने अंदर की जिज्ञासा जब तक शांत न कर ले चैन कहाँ मिलता है। वह पूरी रात सो नहीं पाई। सोचा सीधा रमेश से पूछ लें, मग़र उचित न लगा।

आखिर, उसकी जुगुप्सा ने उसके क़दम वेश्याओं की उस गली की तरफ़ मोड़ दिया। वो ऑटो से चतुर्भुज स्थान से थोड़ा पहले ही उतर गई, और पैदल ही आगे बढ़ी। डर लग रहा था कि कहीं कोई जानने वाला देख न ले। उसके पति सरकारी कर्मचारी हैं। शहर में अनेकों लोग होंगें उनके जानने वाले। उसे भी शिक्षिका के रूप में कितने लोग जानते हैं। कोई देख ले तो क्या उत्तर देगी? यही सब सोचते हुए वो नज़रें चुराते हुए तेज़ी से आगे बढ़ रही थी। संयोग से उसे किसी से कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ी। वह जिससे मिलने आई थी, सामने ही एक बड़े मकान के बरामदे में खड़ी थी। मगर उसका रूप रोज़ के बस वाले रूप से बिल्कुल अलग था। सादी सूती साड़ी में सादा-सा जूड़ा बनाए वो कहीं से तवायफ़ नहीं लग रही थी। संस्कृति ने ग़ौर किया, केवल उसका वस्त्र ही नहीं, बल्कि उसका व्यवहार भी आज अलग था। वो बच्चों से घिरी उन्हें तोहफ़े बाँट रही थी। जब तक संस्कृति उसके निकट पहुँची, वह आख़िरी बच्चे को तोहफा

देकर विदा कर रही थी।

देख इसमें कपड़े और पटाखे दोनों हैं। जमकर दीवाली मनाना। अपनी गली की दीवाली बाक़ी शहर से कम नहीं होनी चाहिए। कहते हुए उसने बच्चे के मुख को स्नेह से चूमा तो बच्चा भी बदले में उसे चुमकर तेज़ी से भागा। वो खिलखिला कर हँस पड़ी। उस समय उसका चेहरा कितना खिला हुआ लग रहा था। कहीं कोई कालिमा नहीं। एकदम पवित्र। एक गृहस्थ स्त्री के समान। 'तवायफ़ भी तो आखिर एक औरत ही है हमारे समान' संस्कृति के मन में आवाज़ गूँजी। नहीं, वो मेरे समान नहीं। उसने तेज़ी से अपना सिर झटका। तब तक उस तवायफ़ की दृष्टि उस पर पड़ चुकी थी, जो आश्चर्य से उसे घूर रही थी।

अरे आप... यहाँ कैसे? इस गली में... आपके पैर मैले तो नहीं हुए?

उसके उपहास ने संस्कृति के बदन में आग लगा दी। लेकिन उसे तुरंत आभास हुआ कि यह कटाक्ष उसके बस में किये गए व्यवहार के बदले में है, जब उसके सीट पर बैठने पर संस्कृति ने अपना बदन ऐसे समेटा, जैसे कोई गंदी वस्तु उसे छू रही हो। उसका मन हुआ कि उलटे पाँव लौट जाए, मगर उसके विचार ने उसके कदम रोक लिए। उसने खुद को थोड़ा गंभीर बनाते हुए कहा–

"मुझे तुमसे कुछ बात करनी है।"

"मुझसे... अच्छा, अपने पति की ख़बर लेने आई हैं आप।"

उसके मुख से अपने पति का ज़िक्र सुन वो दहक उठी। समझ न आया कि क्या कहे, तब तक उसने ही सामने से कहा–

"बाहर ही खडे होकर बात करनी है कि अंदर भी आएँगी।"

जी तो नहीं चाह रहा था, मगर ऐसे बाहर खड़े होकर ऐसी बात कैसे करती, सो अंदर जाना ही पड़ा। सामने एक छोटा–सा हॉल था, जिसमे मामूली–सा सोफा लगा था। दीवारों पर स्त्रियों और देवी–देवताओं की तस्वीरें लगी थीं।

"बैठ जाइए, खड़ी कब तक रहेंगी।"

तवायफ़ ने शिष्टाचार वश कहा।

"नहीं, मैं ठीक हूँ।" संस्कृति को वहाँ की किसी भी चीज़ को छूना भी गँवारा न था।

चाय–कॉफ़ी तो आप लेंगी नहीं। आपने तो हमारी मेहमाननवाज़ी पर प्रश्नचिह्न लगा दिया। वरना नवेली की मेहमाननवाज़ी तो इस पूरे बाजार में मशहूर है। कहते हुए वह खुद ही हँस पड़ी।

"देखो, मैं तुमसे कुछ ज़रूरी बात करने आई हूँ।" संस्कृति जल्दी यहाँ से जाना चाह रही थी।

"ज़रूरी बात.. अच्छा यही न कि मैं आपके पति को जानती हूँ क्या? और अग़र हाँ, तो कैसे?"

उसकी तेज़ दिमाग पर संस्कृति चकित हुई।

"हाँ यही.. क्या तुम उन्हें जानती हो?"

"अरे मैडम जी, आपके पति को मैं क्या, आधा शहर जानता है। अरे, सरकारी अफसर हैं। और वो लोग तो और अच्छे से जानते हैं, जिनकी नौकरी वो खाते हैं।"

"क्या! क्या बक रही हो तुम?"

"बक नहीं रहे मैडम जी, सच ही कह रहे हैं। नौकरी पाने वाले तो दो चार दिन में भूल भी जाते हैं, मगर जिनकी नौकरी खाए, वो तो सारी जिंदगी न भूलेगा।"

"क्या बकवास कर रही हो?"

बक़वास.. हाँ हम जैसी औरत तो बक़वास ही करती हैं। यही धंधा है हमारा। लेकिन कम–से–कम किसी का हक़ नहीं मारते।"

"ये सब क्या कह रही हो तुम? मेरे पति ने किसका हक़ मारा है?"

संस्कृति के मुख पर उभरे अजीब भाव देख नवेली को हँसी आ गई।

"व्हाट नॉनसेंस! तुम्हें हँसी आ रही है?" संस्कृति चिढ़ उठी।

"हँसूँ नहीं तो क्या करूँ मैडम जी? आप जैसी सीधी–सादी औरतें.. जो इस युग में भी पति को परमेश्वर मानती हैं। उनके लिए कुछ गलत भी नहीं सोच सकतीं। मग़र मैडम जी, इस बाजार में सभी नंगे हैं। किसी का शरीर नग्न है तो किसी की आत्मा।"

"ये सब क्या कह रही हो तुम?"

"सही कह रहे हैं मैडम जी। शहर की बाकी गलियाँ, जहाँ आप शरीफ़ लोग रहते हैं ना, वो गली भी हमारी तरह ही है नंगी... हमारा शरीर नंगा हो तो जग हँसाई हो, हम घृणित... और जिनकी आत्मा नंगी है, उनको तो लोग कुछ नहीं कहते, वो शहर में प्रतिष्ठित लोग कहलाते हैं।"

"देखो, मुझे तुम्हारी ये बकवास नहीं सुननी। तुम मुझे बस ये बताओ कि तुम मेरे पति को कैसे जानती हो? और उन पर ये कैसा इल्जाम लगा रही

हो?" संस्कृति चिढ़ उठी थी।

"अच्छा, तो आप ये जानना चाहती है? रुकिए, आपको प्रमाण के साथ सच सुनाते हैं, क्योंकि मेरी बात पर तो आपको भरोसा होगा नहीं।"

कहते हुए वो बरामदे में किसी को आवाज़ लगाई।

"ओए, नंदू इधर आ!"

अगले ही क्षण 25 -26 बरस का एक लड़का सामने आ खड़ा हुआ।

"हाँ दीदी।"

"अरे, नौकरी कैसे चल रही है तुम्हारी? जबसे नौकरी लगी भूल ही गया है तू हमें।"

नवेली ने तीव्र स्वर में कहा कि आवाज़ अंदर तक जाए। अंदर संस्कृति हैरान थी कि ये क्या हो रहा है।

"नहीं दीदी.. कैसी बात करती हो? आपको हम कभी भूल सकते हैं क्या.. अरे, हम और हमारा पूरा परिवार आपको भगवान के पहले याद करता है।"

"अरे अरे, क्या बोलता? पाप चढ़ाएगा क्या?"

"नहीं दी, सच कहते हैं, हमारे परिवार के लिए आप भगवान ही हो। साक्षात देवी, वरना कौन करता है इतना?"

लेकिन दीदी इसके लिए आपने बड़ी कीमत चुकाई ये सोच बहुत दुख होता है। हमारे कारण आपको...

"अरे रहने दो, रहने दो। ज़्यादा परेशान होने की आवश्यकता नहीं। मेरा तो पेशा ही यही है। ये शरीर तो रोज़ बिकता है। लेकिन इस बार बिक कर दुख नहीं हुआ। पूजा जैसी अनुभूति मुझे भी हुई। ऐसा लगता है जैसे, सारे पाप धूल गए। कृतज्ञ तो मैं हो गई तुम्हारी।"

"ये तो आपका बड़प्पन है, जो ऐसा सोचती हैं। तुम सच में महान हो दीदी। आप न होती तो कहाँ से लाता दो लाख रुपया मैं? वो लोग सचमें में बहुत दुष्ट हैं। हमारे अनुकम्पा .. हमारे हक़ की नौकरी छीन रहे थे।"

"अरे छोड़-छोड़, अब तो नौकरी मिल गई। अब आराम से नौकरी कर। हाँ, ईमानदारी से करना। तू किसी का हक़ मत मारना।"

"नहीं, नहीं दी.. हम कभी कुछ ग़लत नहीं करेंगे।"

"ठीक है, जा।"

"जी दीदी, प्रणाम।"

नंदू जाने लगा, तभी नवेली फिर पुकारती- "अच्छा, वो रमेश सर तो ठीक हैं ना? फिर कुछ नहीं कहते न?"

"नहीं, अब कोई कुछ नहीं कहता।"

"ठीक है, जा।"

नंदू चला गया और नवेली मुस्कुराती हुई कमरे में आयी। संस्कृति खड़े-खड़े सारी बात सुन रही थी। नवेली अंदर आई तो उससे नज़र नहीं मिला पा रही थी।

"संशय में न रहो मैडम जी, आपके पति तो सच में महात्मा हैं। उन्हें शरीर की भूख नहीं, केवल पैसों की भूख है। उनके साथ नहीं सोई मैं। पर क्षमा करना, आपके पति का नुकसान हो गया हमारे कारण। वो नंदू की अनुकंपा वाली नौकरी, वो दो लाख में बेच रहे थे जो, हो न सका।"

संस्कृति का पूरा शरीर काँप उठा और वो धम से सोफे पर बैठ गई।

"पानी मिलेगा?" संस्कृति ने गला टटोलते हुए कहा।

नवेली ने पास रखे जग से पानी डाल, उसकी तरफ बढ़ाया, जिसे वो एक बार में पी गई। पानी पी वो उठ खड़ी हुई। अब कुछ भी कहने-सुनने की हिम्मत न रही। वो जाने को पलटी कि नवेली ने टोका-

"एक मिनट मैडम जी। एक सवाल हमें भी पूछना था।"

फिर बिना उसके उत्तर की प्रतीक्षा किए बोली- "आपके सभ्य समाज में ऐसा क्यों होता है कि जब एक औरत अपना शरीर बेचती है तो उसे इतना बुरा समझा जाता है। उसे समाज से तिरस्कृत कर दिया जाता है । लेकिन जो लोग रोज़ ही दफ्तरों में बैठकर अपनी आत्मा, अपना ईमान बेचते हैं, उन्हें तो समाज तिरस्कृत नहीं करता। वो तो बड़े सम्मान के साथ आपके समाज मे रहते हैं। तो आप ही बताए, महत्त्व किसका ज़्यादा है? आत्मा का या शरीर का??"

संस्कृति उसकी तरफ़ देख भी न सकी, तेज़ कदमों से बाहर निकल गई। उसके मन में नवेली का प्रश्न घूम रहा था। वास्तव में कौन ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। हम सारी जिंदगी आत्मा की शुद्धि की बात करते हैं और महत्त्व शरीर की शुद्धि को देते हैं। वह यह नहीं जानती कि नवेली सही है या ग़लत, मगर उसने आज शरीफ लोगों की शराफ़त पर प्रश्नचिह्न लगा दिया था।

❀❀

साढ़े–बारह

* मो. इसरार

जन्म :
21 जुलाई, 1979
(सहारनपुर, उत्तर प्रदेश)
शिक्षा :
एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत, शिक्षाशास्त्र), यूजीसी- नेट,पी-एच. डी.
लेखन एवं प्रकाशन :
विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अनेक कहानियाँ प्रकाशित
देवबंद से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'लाइव रिपोर्ट' के सम्पादन का दायित्व भी दो वर्ष तक निभाया है।
सम्पर्कः
मोहल्ला- फ़ौलादपुरा, निकट- देवीकुंड, देवबंद, जिला-सहारनपुर, उत्तर प्रदेश- 247554
mohammadisrar15@gmail-com
मोबा. 9456593126

"अरे यार, जल्दी कर.........जल्दी। देखता नहीं क्या, टाइम निकला जा रहा है। एक तो आज वैसे ही लेट हो गए, ऊपर से तू देरी कर रहा है। ये हथौड़ा-वथौड़ा एक तरफ फेंक, छीनी को दराज में डाल। बाकी काम बाद में निपटाएँगे। साढ़े-बारह बज चुके हैं। कॉलेज की छुट्टी हो गयी होगी। वे आने ही वाली हैं। कॉलेज और फैक्ट्री के बीच का रास्ता, है ही कितना? मुश्किल से पन्द्रह-बीस मिनट लगते हैं। उन्हें यहाँ तक पहुँचने में। इस काम को मार गोली, अपना शैडयूल चेंज नहीं करेंगे। भले ही फैक्ट्री बन्द हो जाए.........।" रहीम, फहीम और जुनैद ने भाग-दौड़ सी करते हुए एक-दूसरे को निर्देश से देते हुए कहा।

एकाएक तीनों ने गंड़ासा बनाने की बड़ी-सी वर्कशॉप- जिसे वे फैक्ट्री कहते थे, का काम बीच में ही छोड़कर शीघ्रता से स्नान किया। वर्कशॉप के काले-चिट्टे कपड़े उतार कर नए धारण किए। बालों को आधुनिक स्टाइल से सजाया, पाउडर से पसीने की बदबू को दूर किया और बन-ठनकर वर्कशॉप के बिलकुल सामने गेट पर खड़े हो गए।

तीनों सजे-सँवरे ऐसे खड़े थे, जैसे अभी-अभी ब्यूटीपार्लर से निकलकर आए हों, अथवा किसी शोरूम के गेट के समीप विज्ञापन स्वरूप दर्शाने के लिए मूर्तियाँ खड़ी की गयी हों। तीनों बगलों में हाथ दबाए, रास्ते को अपलक निहारते, स्वयं को अत्यधिक गौरवान्वित अनुभव कर रहे थे। रास्ते को निहारने का एक पल भी चूकना नहीं चाहते थे।

कुछ समय बाद कॉलेज ड्रेस पहने, स्कूल बैग पीठ पर लटकाए तीन हमउम्र लड़कियाँ आती दिखाई दीं। लड़कियाँ चिड़ियों की भाँति अटखेलियाँ करतीं, एक-दूसरे पर थोड़ा आक्षेप, थोड़ा व्यंग्य, हँसी-मज़ाक-सी करती हुईं जैसे-जैसे समीप आती गई, लड़कों के दिलों की धड़कनें तेज होने लगीं। लड़कियाँ बिलकुल क़रीब से गुजरीं तो तीनों पर बिजलियाँ गिर गईं।

एक ने होठों पर तीन अंगुलियाँ रखकर, फ्लाइंग किस का संकेत किया। पुच....., की आवाज़ मुख से जोर से निकाली। दूसरे ने दिल पर हाथ रखकर, ठण्डी आह-सी भरी, जैसे किसी ने बर्फ का टुकड़ा दिल पर रख दिया हो। तीसरे ने दोनों हाथ फैलाकर 'आय-हाय-हाय' की आवाज़ मुख से निकालते हुए सिर को दाएँ-बाएँ हिलाया। उसको देखकर ऐसा लगा, जैसे उसके प्राण-पखेरू उड़ने वाले हैं।

लड़कियों ने थोड़ा-सा भाव दिया। कजरारी आँखों के तीर उन पर फेंककर

उन्हें घायल भी किया। सीना तानकर, अंगों में कशिश पैदा की। स्वयं के वक्षों को देखकर उन पर दुपट्टा खींचकर लड़कों को लुभाया। लड़कों के समीप से निकलते ही तीनों ने जोर से ठहाका लगाकर आग में घी डालने का काम किया। लड़कियों के हाव-भाव को देखकर यही लगा, 'मामला गम्भीर है। हँसी तो फँसी।'

पिछले एक वर्ष से यही सिलसिला चला आ रहा था। बात न तो इससे आगे बढ़ी थी और न पीछे ही हटी थी। मामला देखम-देख पर अटका हुआ था।

रहीम, फहीम और जुनैद रोज नए स्टाइल से सजते-सँवरते और नियत समय पर इन्टर कॉलेज की लड़कियों पर लाइन मारने के स्टाइल में उन्हें ताकते। उन्हें नज़रों के तीरों से घायल करने की जी-जान से कोशिश करते। बड़े उत्साह से खरीदी गई 'लव गुरु' नामक किताब की अलग-अलग युक्तियाँ अपनाते।

केवल इतना ही नहीं, उन लड़कियों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उन्होंने कई अन्य नुस्खे भी अपनाए- मौलवियों से तागे-तावीज़ बनवाए। जैसा मौलवियों ने बताया, वैसा अमल किया। तांत्रिकों पर हजारों रुपयों की बलि चढ़ाई। लड़की पटाने वाले कई टोने-टोटके भी किए। परन्तु मोहनियाँ मोहित न हो सकीं।

मौलवियों और तांत्रिकों की विद्या ने कमाल नहीं दिखवाया तो निराश होकर तीनों ने 'लव गुरु' नामक पुस्तक खरीदी थी। प्रतिज्ञा स्वरूप यह निर्णय किया था कि अब तंत्र-मंत्र से नहीं, फिल्मी स्टाइल में लड़कियाँ पटाकर दिखाएँगे। ये तावीज़-गडे, मंत्र-तंत्र सब ढोंग है। सज्जन लोगों को छलने का ये सबसे बड़ा हथियार हैं।

लेकिन एक वर्ष का समय और रुपया बर्बाद करने के बाद भी, वे तीनों उनके नामों तक का पता नहीं लगा सके थे। केवल इतना जान पाए थे, 'लड़कियाँ कस्बे के इस्लामिया इन्टर कॉलेज में पढ़ती हैं।'

उनकी फैक्ट्री के सामने से निकलकर, किसी गाँव में जाती हैं या कस्बे में ही कहीं लुप्त हो जाती हैं, वे यह भी नहीं जानते थे। उनकी कक्षाओं तक के विषय में ज्ञात नहीं था उन्हें। परन्तु लड़कों को विश्वास था, तीनों लड़कियाँ एक ही कक्षा में पढ़ती हैं। क्योंकि उनके बैग समान रूप से मोटे होते हैं। उनकी आयु एक समान है। तीनों हमेशा साथ रहती हैं।

एक बार प्रयास भी किया था, उनकी कक्षाओं और नाम आदि के विषय में जानने का। उनसे बात करने सीधे कॉलेज में पहुँच गए थे। परन्तु कॉलेज गेट से ही लौट आए थे, क्योंकि स्वभाव से अत्यन्त सख्त प्रिंसिपल के डंडे की मार, एक अन्य मनचले-शोहदे पर पड़ते देख, घिग्गी बँध गई थी उन तीनों की। बेचारा एक लड़की द्वारा फँसा दिया गया था। जिसे कॉलेज के आँगन में प्रिंसिपल और कई अन्य शिक्षकों द्वारा घेरकर पीटा जा रहा था।

उन तीनों की भी भनक प्रिंसिपल को लग गयी। बस फिर क्या था? चपरासी तक ने हाथ में डंडा लेकर कुत्ते के समान पीछा किया था उन तीनों का। फेंककर मारा गया डंडा जुनैद के सर में लगा था। तुरंत लाल-लाल खून के दर्शन हुए थे। ऊपर से कई मोटी-मोटी गालियाँ भी सुनने को मिली थीं।

फिर कभी हिम्मत न हुई उधर रुख करने की। सारी मजनूगीरी भूल गए थे। उसके बाद फैक्ट्री के गेट पर खड़े होकर ही मामला जमाना शुरू कर दिया था।

उन तीनों की दिनचर्या में 'साढ़े-बारह' का समय नियत था। इस समय वे अर्जेन्ट से अर्जेन्ट काम भी त्याग देते थे। बीच का लंच-समय भी उन्होंने इसके साथ जोड़ रखा था। साढ़े-बारह के तुरंत बाद वे सज-सँवरकर लड़कियों को घूर-घूर कर देखते। "चुराके दिल मेरा गोरिया चली...." वाले अंदाज़ में उन पर लाइन मारते। फिर खाना खाने बैठ जाते। बीच-बीच में हँसी-मजाक करते हुए, गप्पे लगाकर यह जानने का प्रयास करते, 'मामला कहाँ तक पहुँचा है?'

परन्तु वास्तविक स्थिति तीनों को ज्ञात थी। प्यार की नाव में तैरना तो दूर, अभी वे सवार भी नहीं हो सके थे। फिर भी हाव-भावों का एक खिंचाव था, जो उन लड़के-लड़कियों को एक-दूसरे के प्रति आकर्षित किए हुए था। सर्दियाँ आने पर वे लड़के अपने शेडयूल में थोड़ा-सा परिवर्तन कर लेते। कॉलेज टाइम चेंज होने पर वे तीनों साढ़े-बारह के स्थान पर साढ़े-तीन बजे अपने कार्य को प्रगति पर पहुँचाते और रात्रि के नौ-दस बजे तक फैक्ट्री में काम करते।

फैक्ट्री के मालिक, शमीम साहब भी उन तीनों को समझाते-समझाते सर पकड़ लेते थे, "देखो यार, ये प्यार-व्यार कुछ नहीं होता, केवल कुछ समय की सुखद अनुभूति है, फिर दुःख ही दुःख है। समय बर्बाद करके तुमने उन्हें पा भी

लिया, तो मेरी तरह जीवन भर पछताना पड़ेगा। प्यार वो आग है, जो भस्म करने के बाद भी शान्त नहीं होती।"

शमीम साहब की उम्र चालीस से ज्यादा नहीं थी। उन्होंने प्यार की आग में जलकर 'लव मेरेज' की थी, जो सफल नहीं हो पायी थी। इसलिए वे हमेशा उन तीनों को प्यार से बचकर चलने की हिदायत देते रहते थे। लेकिन उनका व्यवहार, उन तीनों के साथ फ्रेंडली था। इसलिए वे उन तीनों को समझाते हुए कभी-कभी प्यार को 'हड़काए कुत्ते' की संज्ञा दे डालते, जिसके एक बार काटने पर, बारह वर्ष तक हड़क उभरने का अंदेशा रहता है।

शमीम साहब की बातें सुनकर उन तीनों का केवल एक ही जवाब रहता, "जनाब! आपको अपने काम से मतलब। आपको अपना हर काम समय पर फिट मिलता है और आगे भी मिलता रहेगा। उसके लिए हम ओवर टाइम करें या रात को काम करें। लेकिन साढ़े-बारह से दो बजे के बीच, हमें उन्हें देखने से कोई नहीं रोक सकता।"

फैक्ट्री में कितना भी ज़रूरी काम क्यों न हो? कितने भी ऑर्डर बुक क्यों न हो? नौकरी चली जाने का खतरा ही क्यों न हो? रहीम, फहीम और जुनैद फैक्ट्री का काम छोड़कर निर्धारित समय पर कॉलेज की लड़कियों को चाह भरी दृष्टियों से घूरना नहीं भूलते थे। मामला जमाने के लिए उन्होंने कस्बे की एवन दुकानों और जनरल स्टोरों से कीमती व महँगे शैम्पू, साबुन, सुगन्धित तेल, इत्र आदि भी जमकर प्रयोग किए। परन्तु मामला ज्यों-का-त्यों बना रहा। तीनों बन्दे खाना-पीना भूल सकते थे, लेकिन साढ़े-बारह से दो बजे के बीच उन लड़कियों को आह भर-भरकर देखना नहीं भूलते थे।

लड़कियाँ भी कुछ ऐसी शरारती थीं कि उन तीनों को देखते ही चटक-मटक करके, हाव-भावों में आकर्षण उत्पन्न करके उन्हें लुभाने का खूब प्रयास करतीं। कभी कनखियों से देखतीं तो कभी एकटक देखते हुए पलकें तक न झपकतीं। कभी दुपट्टे को गले से खींचते हुए, सीने पर हाथ फेरकर उसे ढाँपतीं। उन लड़कों को देखकर, कभी खिलखिलाकर हँसतीं तो कभी बन्द होठों से मुस्करातीं। कभी-कभी तो ऐसा स्वांग रचतीं कि तीनों को लगता, 'बस, फँसने ही वाली हैं।'

किसी त्योहार आदि की छुट्टी के कारण जब कॉलेज सूना रहता, उन लड़कों की दुनिया वीरान हो जाती। सड़कों पर चहल-कदमी तो रहती, पर उनके अरमान मरे रहते। एक-दूसरे का चेहरा भी देखना पसन्द न करते। कार्य में कोई रुचि नहीं, एकदम कछुआ चाल। हाव-भावों का जोश ठंडा। साढ़े-बारह बजते ही दबी इच्छाएँ भूचाल का रूप न धारण करतीं। किसी के प्यार से पुकारने पर भी चिढ़कर बोलते।

शमीम साहब कोई काम करने को कहते तो ठंडे लोहे के समान मोड़ते इधर को, मुड़ते उधर को। उनके रुख और व्यवहार को देखकर ऐसा लगता कि अपने-अपने अब्बुओं की कब्र पर मिट्टी डालकर आए हों।

इसके ठीक विपरीत, कॉलेज खुलने के दिन, चेहरा गुलाब-सा खिला रहता। उत्साह के भाव स्पष्ट झलकते। कोई बुरा-भला भी कहता तो हँसकर टाल देते। सभी काम साढ़े-बारह को ध्यान में रखकर बड़ी रफ़्तार से किए जाते। काम कितना भी कठिन क्यों न हो, साढ़े-बारह तक पूरा करना उनका लक्ष्य रहता। उस दिन तीनों गर्व से सीना फुलाकर कहते, 'आज प्यार से मुलाकात होगी।'

शमीम साहब अच्छी तरह जानते थे- रहीम, फहीम और जुनैद साढ़े-बारह की छुट्टी किसी भी कीमत पर कैंसिल नहीं कर सकते। फिर भी वे उन पर चुटकियाँ ले-लेकर उन्हें छुट्टी न करने की अक्सर सलाह देते रहते थे। उनके स्नेहमयी प्यार की आग में घी डाल-डालकर उन्हें उकसाते रहते थे। स्वयं का उदाहरण देकर उन्हें चिढ़ाते भी थे, "सालो! मैंने अट्ठारह साल की उम्र में लव मैरेज कर ली थी, तुम बीस के सनडम-सनडे आज तक उनकी..नहीं उखाड़ सके। नाम-पता तक ज्ञात नहीं उनका, चले इश्क लड़ाने।"

एक दिन उन तीनों को उकसाते हुए शमीम साहब बोले, "सीजन चल रहा है, गंड़ासे की बहुत माँग है, कुछ दिन बीच में साढ़े-बारह पर छुट्टी मत करना, प्रतिदिन तुम्हें पाँच-सौ रूपए मन्थली सेलरी से अलग दूँगा।"

इस लालच के प्रतिस्वरूप उन तीनों का एक ही जवाब था, "इस समय के लिए आप हमें पाँच-सौ तो क्या, पाँच-हजार भी दीजिए, हम अपना शेड्यूल चेंज नहीं कर सकते। इस समय के लिए तो हम 'मौत का फ़रिश्ता' से भी समझैता नहीं कर सकते।"

शमीम साहब ने मसखरे अंदाज़ में जब अधिक जोर डालना चाहा तो उन तीनों ने काम करने से इनकार कर

दिया। इतना ही नहीं अपनी-अपनी नौकरियाँ भी छोड़ने को तैयार हो गए। इसलिए शमीम साहब को अपनी हार मानकर, अपनी राय वापस लेनी पड़ी।

उन तीनों को लड़कियों के नाम, घर, कक्षा आदि का कुछ भी पता नहीं था। लड़कियाँ भी देखने में न अधिक सुन्दर थीं और न कुरूप। साधारण-सी भाषा में कहा जाए तो ठीक-ठाक, कामचलाऊ, समय के सदुपयोग के लिए उपयुक्त। फिगर में भी रोमानियत का नशा कम ही था। हाव-भावों को आकर्षक बनाने में अल्हड़-नादान। उनके भोलेपन को देखकर लगता था, 'दूसरों को अपने जाल में फँसाने के गुर सीख रही हैं।' लेकिन उन लड़कों की भावना उनमें ऐसी रमी, उन्होंने सब कुछ अनदेखा कर दिया। उन पर यह कथन एकदम सटीक बैठता था, "जब पत्थर से दिल मिल जाए, तो हीरे की आवश्यकता नहीं रहती।"

लेकिन एक और बड़ा आश्चर्य यह था कि तीनों इस विषय में भी अनिर्णित थे कि किसका, किसके साथ चक्कर है? कौन, कौन-सी को चाहता है और किस पर लाइन लगाता है? इस विषय को लेकर उनमें कभी कोई विवाद या झगड़ा भी नहीं हुआ कि 'तूने मेरे वाली पर लाइन लगाई, मैं तुझे नहीं छोड़ूँगा। तूने मेरी जान की तरफ सीटी बजाई, तेरी जीभ काट लूँगा। तूने मेरे सौदे या माल की तरफ हाथ हिलाया, मैं तेरा हाथ तोड़ दूँगा...वगैरह-वगैरह...।'

फिर भी एक लगाव था, एक खिंचाव था, उन सबके बीच एक आकर्षण था, जो उन्हें आपस में बाँधे हुए था। लड़कों की सोच भी उत्कृष्ट थी, 'वे भी तीन, हम भी तीन। पट गईं तो एक-एक बाँट लेंगे।'

शायद एक कसक भी थी, जो दोनों तरफ के दिलों को सालती थी। यह कसक न कभी कम हुई और न बढ़कर प्यार का रूप ही धारण कर पायी। मामला त्रिशंकु के समान बीच में ही लटका रहा। वे तीनों उनकी एक झलक देखने से रोकने वाले को अपना सबसे बड़ा शत्रु मानते थे। इसके लिए जब कभी उनकी फैक्ट्री का काम बाधा बना, वे अपना रोजगार, अपनी नौकरियाँ छोड़ने तक को तैयार हो गए।

वक्त गुजरने के साथ-साथ उन तीनों लड़कियों ने इंटर उत्तीर्ण किया अथवा कॉलेज की जिस भी अंतिम कक्षा में वे पढ़ती थीं, उसे उत्तीर्ण किया और पता नहीं कहाँ तथा किस दिशा में आगे बढ़ गईं।

इस प्रेम कहानी को घटित हुए, काफी समय बीत चुका है। रहीम, फहीम और जुनैद आज भी उसी गंड़ासे की वर्कशॉप- जिसे वे फैक्ट्री कहते थे- में गंड़ासा कटाई, छटाई और उसकी पिटाई का काम करते हैं। उनके जीवन में कोई खास परिवर्तन नहीं आया है। उसी दुकान पर पहले काम करते थे, उसी पर आज भी करते हैं। सुबह नौ बजे काम पर आते हैं, शाम को पाँच बजे चले जाते हैं। उनकी पहले वाली सेलरी में पाँच-पाँच हजार रुपयों का इज़ाफा अवश्य हो गया है। परन्तु उनकी वेशभूषा पहले से कहीं अधिक बदतर हो चली है। देखने मात्र से ही दिल टूटे आशिक और मजनू लगते हैं।

जिन ड्रेसों को पहनकर वे वर्कशॉप में काम करते हैं, वे ड्रेस पसीना, गरद और मैल के कारण इतनी गन्दी हो गई हैं कि धुलने के लिए तड़प-तड़प कर दम तोड़ती-सी दिखाई दे रही हैं। यदि ड्राइक्लीन भी कराईं जाएँ तो भी उनमें निखार न आएगा। धूल जमने के कारण कपड़ा भी दोगुना मोटा लगता है।

यदि कहीं कोई परिवर्तन हुआ है, तो वह हुआ है जुनैद की ज़िन्दगी में। उसकी शादी हो गई, ज़िन्दगी आधी हो गई। रहीम की बात चल रही है, अतः उसका जीवन भी परिवर्तित होने वाला है।

साढ़े-बारह अब भी बजते हैं और आगे भी बजते रहेंगे। लेकिन रहीम, फहीम और जुनैद के लिए उसकी वैल्यू अब समाप्त हो चुकी है। समय के साथ-साथ उन तीनों की जवान उमंगें बर्फ बन गई हैं। उनमें वो पहले वाला जोश और उत्साह अब शायद ही कभी आ पाए। इस समय कोई भावना उन्हें उद्वेलित नहीं करती। 'साढ़े-बारह' का समय ज़ख्मी नहीं करता। उन तीनों को देखकर यही लगता है, 'भूल गए राग, भूल गए रबड़ी। याद रहा क्या, बस नून-तेल-लकड़ी।'

कभी-कभी शमीम साहब उन तीनों पर कटाक्ष करते हुए 'साढ़े-बारह' का समय होते ही जोर से चिल्लाते हैं, "साढ़े बारह बज गए। जल्दी... अरे यार, जल्दी...।"

तब वे तीनों तुरंत वर्कशॉप के घंटे की ओर देखते हैं और दिल के अरमाँ आँसुओं में बह जाते हैं। फिर मन ही मन कुढ़कर, दबी ज़बान में शमीम साहब को कोई गाली देकर, नीचे मुँह करके अपने-अपने कामों को धीमी गति से करने लगते हैं। ❋❋

उड़ान

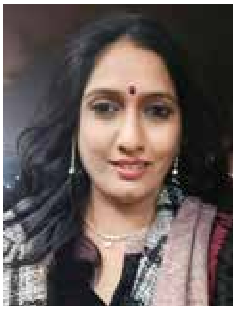

अलका गुप्ता
सम्पर्क:
सी-24, इन्दिरा इन्क्लेव
(निकट इग्नू) नेब सराय,
नई दिल्ली-110068
मो- 8920425146

आज पारवी की साँसें जैसे उसके मोबाइल में ही अटक कर रह गई थीं। किसी भी काम में उसका मन नहीं लग रहा था।

'सुबह से ना कोई कॉल, ना कोई मैसेज, ये लड़का भी न। कोई टीचर भी फोन नहीं उठा रहीं, क्या करूँ। पहली बार मुझसे दूर गया है। लेकिन दोस्तों, टीचर्स के साथ पिकनिक पर जाते हुए मोनू कितना खुश था।' विचारों के जुगनू पारवी के मन में कभी जल, कभी बुझ रहे थे।

वह ड्राइंग रूम के एक कोने से दूसरे कोने तक बैचेन होती हुई खुद से ही बात किए जा रही थी। तभी उसके लाड़ले की कॉल आ गई। कॉल पिक करते ही पारवी ने सवालों की झड़ी ही लगा दी।

"सुबह से ना कोई फोन, ना मैसेज, तू ठीक तो है न बेटा...कुछ खाया पिया?"

"अरे माँ!"

मोनू पारवी को बीच में ही रोकते हुए बोला, "रात सोने से पहले ही तो बात की थी ना। आज सुबह उठते ही एक्टिविटीज़ शुरू हो गई थीं, अब ब्रेक में फोन देखा। करता हूँ आपको कॉल माँ। मैडम बुला रही है।"

पारवी कुछ बोलती, फोन कट चुका था।

"ये मेरा मोनू ही बोल रहा था न, जो मेरा पल्लू छोड़ता ही नहीं था, और आज..."

आश्चर्य में डूबी पारवी, सोफे पर लगभग गिर-सी गई।

तभी उसकी दृष्टि बॉलकनी में रखे गमले पर गई, गमला खाली था। जो कबूतरी वहां अपने बच्चे को अपने पंखों में छिपाए बैठी रहती थी, वो भी आज बॉलकनी की रेलिंग पर अकेली, उदास बैठी थी । पारवी का दिल माँ कबूतरी के लिए भी भर आया और कह उठा-

"क्यों उदास होती है रे ! तेरे हों या मेरे, बच्चों को तो उड़ान भरनी ही है। हमें खुद को समझाना और मजबूत बनाना पड़ेगा। यह तो बच्चों की पहली उड़ान है पगली, अभी तो पूरा आसमां फतह करना बाकी है।"

और फिर भीगी आँखों की कोरों को पोंछते हुए, होठों पर हल्की-सी मुस्कान लिए उठ खड़ी हुई।

सूचनार्थ

'समकालीन अभिव्यक्ति' में समीक्षार्थ कृतियाँ आमंत्रित हैं। समीक्षार्थ कृतियाँ प्रेषित करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें:

- समीक्षार्थ प्रेषित कृति का प्रकाशन प्रेषित करने की तिथि से दो वर्ष से अधिक समय पूर्व न हुआ हो।
- सामान्यत: अनूदित कृति की समीक्षा नहीं की जाएगी। यदि अनूदित कृति समीक्षार्थ भेजते हैं तो मूल कृति भी भेजें।
- प्रायोजित समीक्षा स्वीकार्य नहीं है। केवल समीक्षा न भेजें। समीक्षा के साथ कृति भी भेजें, तभी समीक्षा के प्रकाशन पर विचार किया जाएगा।
- समीक्षा न होने पर भी कृति वापस नहीं भेजी जाएगी।
- कृति की पावती की सूचना फोन/ई-मेल द्वारा दी जाएगी।

लेव तोलस्तोय पर उनके अनुयायी वी.जी. चेत्र्कोव का संस्मरण

एल.एन. तोलस्तोय के अंतिम दिन

★ अनुवाद : रूपसिंह चन्देल

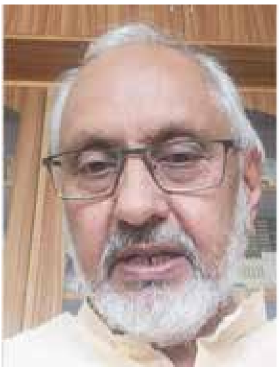

जन्म : 12 मार्च, 1951 : कानपुर के गाँव नौगवाँ (गौतम) में।
शिक्षा : पी-एच. डी. हिंदी (कानपुर वि.वि.)
सृजन : *21 उपन्यास, 21 कहानी संग्रह, 5 संस्मरण पुस्तकें, 4 आलोचना पुस्तकें, बाल साहित्य, यात्रा संस्मरण, लेव तोलस्तोय की जीवनी, उन पर 30 संस्मरण (तोलस्तोय का अंतरंग संसार), दॉस्तोएव्स्की के पत्र और उन पर संस्मरणों के अनुवादसहित 85 पुस्तकें।*
सम्मान : *उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान से 'साहित्य भूषण', रूस का ' वी. एम. तेरेखोव स्मृति सम्मान', आचार्य निरंजन नाथ सम्मान और हिन्दी अकादमी सम्मान।*
संप्रति : *शासकीय सेवा से निवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन*
सम्पर्क :
रूपसिंह चन्देल फ्लैट नं. 403, टॉवर-2, विपुल गार्डेन्स, धारूहेड़ा-123106, जिला-रेवाड़ी, हरियाणा मो. 8059948233

(व्लासदमीर ग्रिगोर्येविच चेत्र्कोव (1854-1936): तोलस्तोय के अंतरंग मित्र, अनुयायी और रूसी क्रान्ति के बाद सोवियत सरकार द्वारा तोलस्तोय की रचनाओं के प्रकाशन में सहयोग)

1 नवम्बर, 1910 को अपराह्न तीन बजे अस्तापोवो से भेजा गया लेव निकोलाएविच तोलस्तोय का निम्नलिखित तार प्राप्त हुआ ।

"कल बीमार पड़ गया । यात्रियों ने मुझे दुर्बल अवस्था में ट्रेन से उतरते देखा। दूसरों द्वारा जान लिए जाने का भय। आज बेहतर, यात्रा जारी रहेगी, उपाय कर लिए हैं। क्षमा! निकोलाएव . ('निकोलाएव' छद्म नाम था जिसपर हम एकमत थे)।"

मैं रात की पहली ट्रेन से तूला से रवाना हुआ और नवम्बर 2 को सुबह नौ बजे आस्तापोवा पहुंचा। मैं स्थानीय स्टेशन मास्टर इवान इवानोविच आजोलिन से मिला, जो भद्र और उदार व्यक्ति थे और तोलस्तोय के प्रति गंभीरता से समर्पित थे। सबसे पहले उन्होंने उनके उपयोग के लिए अपने घर के दो कमरे दिए, फिर अपनी पत्नी और बच्चों के लिए एक अलग मकान लेकर उन्होंने पूरा घर ही उन्हें दे दिया था। वह मुझे उस घर में ले गए मैंने लेव निकोलाएविच को बहुत ही कमजोर लेकिन पूर्णरूप से चैतन्य अवस्था में शय्यासीन पाया।

मुझे देखकर वह बहुत प्रसन्न हुए और अपना हाथ आगे बढ़ा दिया, जिसे मैंने हलके से चूमा। उनकी आँखों में आँसू आ गए और उन्होंने तुरंत पूछा कि मेरा परिवार कैसा था।

जैसे ही हमने वार्तालाप प्रारंभ किया, साँस लेने में उन्हें कठिनाई होने लगी। कराहते हुए वह बोले, "जब मैं मूर्छित हुआ, बेहतर था, कुछ भी महसूस नहीं किया, उठा और सब कुछ अच्छा था।" स्पष्टरूप से वह बहुत अधिक कष्ट भोग रहे थे।

वह जल्दी ही बोलने लगे और ऐसा प्रतीत हुआ कि उस क्षण उनके मस्तिष्क में जो कुछ मुख्य बात थी, वह कह देना चाहते थे। बहुत उग्रता के साथ उन्होंने कहा कि सोफिया अन्द्रेएना को उनके पास आने से रोकने के लिए सब कुछ किया जाए। अनेक बार उन्होंने बहुत ही उत्तेजित स्वर में पूछा कि उनका इरादा क्या था? जब मैंने कहा कि उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि वह उनकी इच्छा के विरुद्ध उनसे मिलने का प्रयत्न नहीं करेंगी, तब ऐसा प्रतीत हुआ कि उन्हें

बहुत राहत मिली थी और अपने उस भय के विषय में शेष पूरे दिन उन्होंने चर्चा नहीं की थी।

उन्होंने गोल्डेन-वीजर, अपनी पुत्री तात्याना सुखोतिना और यास्त्रया पोल्याना में क्या हो रहा था के विषय में पूछा। मैंने यथासंभव संतोषजनक उत्तर दिए। अन्य बातों के साथ उन्होंने कहा, "सेर्गेई से मुझे बहुत अच्छा पत्र मिला। मेरे घर छोड़ने के मामले में वह मेरे समर्थन में दृढ़तापूर्वक मेरे साथ खड़ा है......"

उस दिन शाम लगभग पांच बजे संभवतः अपने दिमाग में आ रहे विचारों, जो उन्हें परेशान कर रहे थे, के समाधान के लिए लेव निकोलाएविच ने मुझसे कहा कि में उनके लिए अखबार पढ़ूं। मैंने पास पड़ा अखबार उठा लिया, उसे खोला और पढ़ना प्रारंभ किया, जिसमें प्रकाशित था कि तोल्स्तोय ने यास्त्रया पोल्याना क्यों छोड़ा था। इस विषय में मैंने तोल्स्तोय को बताया कि पूरे देश से मिले अनेक पत्रों के उत्तर में मैंने समाचार पत्र को उनके जाने के विषय में पत्र लिखा था। मेरे पत्र को लेकर वह बहुत उत्साहित हुए, जो प्रकाशित नहीं हुआ था। मेरे युवा मित्र अलेक्सेई सेर्गेयेन्को, जो मेरे साथ आस्तापोवो गए थे, बगल के कमरे में थे और उन्होंने हमारी बातचीत सुन ली थी। वह मेरे पत्र की एक प्रति ले आए और मैंने उसे तोल्स्तोय को पढ़कर सुनाना प्रारंभ किया। एक स्थान पर किसी के प्रवेश से मुझे रुकना पड़ा। जब वह व्यक्ति चला गया मैं समाचार पत्र पढ़ना प्रारंभ ही करने वाला था, लेकिन तोल्स्तोय ने पत्र के विषय में पूछा, 'उतना ही था।'

'नहीं, और भी है।'

'फिर उसे भी पढ़ो'

उन्होंने उसे अंत तक तनाव के साथ ध्यानपूर्वक सुना। जब मैंने समाप्त किया और उनकी ओर देखा, वह रो रहे थे। 'अत्युत्तम।' गहन भावना के साथ वह बोले। फिर मैंने उन्हें कुछ टिप्पणियां पढ़कर सुनाई। टिप्पणियां उनके विषय में थीं, जिनसे उन दिनों अखबार भरे रहते थे। पहले ऐसा प्रतीत हुआ कि वह सुनने में रुचि ले रहे थे, फिर उन्होंने कहा कि उस विषय को पढ़ना बंद कर दूं और राजनैतिक समाचार सुनाने के लिए कहा। मैंने कुछ मुख्य आलेख पढ़कर सुनाए। वह शांत हो गए। संभवतः वह एक कान से सुन रहे थे। उनके लिए जो पढ़ा जा रहा था मशीनी ढंग से अपने को उन विचारों के हवाले कर वह अपने मस्तिष्क के उत्कट श्रम से संक्षिप्त निजात पा रहे थे।

अगले दिन, नवम्बर 3 को लेव निकोलाएविच ने मुझसे पूछा कि उनके 'साइकिल ऑफ रीडिंग' के संशोधित संस्करण को कितनी सफलता मिल रही थी। वह कुछ दिनों से, अंशतः सेंसर की आपत्ति उठाए जाने के कारण, रुका हुआ था। उन्होंने मुझसे पूछा कि संयोग से क्या मुझे उनके सामाजिक आलेखों की पाण्डुलिपि मिली है, जो चेक लोगों के एक ग्रुप से संबद्ध विषय पर लिखी गई थी और जो हड़बड़ी में उनके यास्त्रया पोल्याना से प्रस्थान के समय वहां छूट गयी थी? दुर्भाग्य से वह मुझे नहीं मिली थी। बाद में उनके जर्नल में मैंने निम्न दर्ज पाया था : 'समाजवाद पर मेरे आलेख गुम हो गए हैं। बहुत बुरा नहीं, बहुत बुरा नहीं' (लेव निकोलाएविच की मृत्यु के पश्चात पाण्डुलिपि यास्त्रया पोल्याना में उनकी स्टडी की एक मेज पर मिली थी)।

डॉक्टरों ने मुझसे कहा कि मैं प्रयास करूं कि लेव निकोलाएविच कुछ भोजन ग्रहण करें। जब मैंने इस विषय में उनसे बात की, वह बोले, "कुछ भी खाने की मेरी इच्छा नहीं है और यह मेरा विचार है कि यदि कोई नहीं चाहता, तो उसे कुछ भी नहीं लेना चाहिए।......"

उस दिन लेव निकोलाएविच ने विशेष सजीवता दिखाई। उस दिन वह बहुत उत्तेजक रूप से वाचाल थे। उन्होंने संतोष के साथ बताया कि उनका ज्वर नीचे आ गया था। जब गंभीर परीक्षण के बाद डॉक्टर दूसरे कमरे में चले गए, उन्होंने कुछ जोश के साथ कहा कि डॉक्टरों ने स्वयं को छोटी-सी बात बैक्टीरिया और ऐसी ही कुछ बातों में व्यस्त किया हुआ है। अपनी आवाज ऊंची कर वह कहते गए, "स्वास्थ की स्थिति क्या सुधर रही है ?" यह देख कि वह उत्तेजित हो रहे थे, मैंने उन्हें रोकते हुए कहा कि उन्हें अधिक बातें नहीं करनी चाहिए और शेष बातें बाद में बता सकते हैं। मैं पर्दे के पीछे आराम करने चला गया।

कुछ देर बाद उन्होंने मुझे बुलाया और कहा, "मैं आपसे कुछ अनुरोध करना चाहता हूं, लेकिन यदि आप उसे असुविधाजनक पाएं तो कृपया बताने में संकोच न करें।" स्पष्टतया यह देखकर कि मैं उनके इस प्रस्ताव से भौंचक था, उन्होंने मुस्काराते हुए आगे कहा, 'भयभीत न हो।' और फिर मुझसे पूछा, मैंने क्या सोचा कि उन्हें 'रिसरेक्शन' के अंग्रेजी अनुवादक मूडी को क्या उत्तर देना चाहिए, जिसने लेव निकोलाएविच को यास्त्रया पोल्याना के किसानों की सहायतार्थ प्राप्त रायल्टी से 500 रूबल

भेजने का प्रस्ताव किया था।... यह जानते हुए कि लेव निकोलाएविच उस पैसे से स्थानीय किसानों के हित के लिए अन्न भण्डार बनाने के इच्छुक थे, मैंने कहा मैं सोचता हूं कि आप कृतज्ञतापूर्वक उसे स्वीकार कर लें। लेव निकोलाएविच अत्यंत प्रसन्न हुए और बोले, "फिर मेरे नाम से मूडी को इस आशय का उत्तर भेज दो।" क्षणभर चुप रहने के बाद उन्होंने अंग्रेजी में पत्र डिक्टेट करना प्रारंभ किया, "उस स्थान के लिए जाते हुए जहां मैं एकांतवास करना चाहता था...... आप जानते हैं मैं क्या कहना चाहता हूं..... बीमार पड़ गया ?" मैंने लिख लिया- "हां, हां ऐसा ही कृपया पत्र लिखें।"

कुछ देर बाद उन्होंने पूछा, क्या मैं तान्या (तात्याना उनकी बड़ी बेटी) से मिला? डॉ. मकोवित्स्की से उन्हें ज्ञात हुआ था कि वह पहले से ही आस्तापोवो में थी। 'मैं उससे पूछना चाहता हूं कि सोफिया अन्द्रेएव्ना कैसी हैं?' उन्होंने कहा, 'तान्या यास्त्रया पोल्याना से कैसे आयी? निःसंदेह उसने सोफिया अन्द्रेएना से कहा होगा कि उसे अपने घर जाना है और वहां के बजाय वह यहां आ गई।'

'मैं आज भावुक मनःस्थिति में हूँ।' उन्होंने मुझसे कहा. और सच बात यह कि जब मैंने उनसे कहा कि उनके प्रेमाभिव्यक्ति और उनकी बीमारी पर विचारकर मैं कितना प्रभावित हुआ हूँ वह रोने लगे। पुनः मैं वहां से उठ गया और पर्दे के पीछे चला गया। जब मैं कुछ देर बाद उनके बिस्तर के पास आया मैंने उन्हें आंखों से आँसू पोछते पाया।

अपराह्न लेव निकोलाएविच ने तात्याना ल्वोव्ना को बुलवाया। मैं यह देखने के लिए गया कि अपनी बड़ी बेटी के साथ वह कितना प्रसन्न थे और सुना कि किस प्रसन्न व्याकुलता के साथ वह सोफिया अन्द्रेएव्ना के विषय में पूछ रहे थे। उनका अनुमान था कि सोफिया अन्द्रेएव्ना यास्त्रया पोल्याना में थीं, जबकि वास्तव में वह आस्तापोवो स्टेशन में एक रेल के डिब्बे में थीं, उनसे कुछ गज की दूरी पर। तात्याना ल्वोव्ना ने यह बताकर कि उसकी मां कहात्र थीं, अपने पिता को दुखी नहीं करना चाहती थी। इस कारण जब उनके प्रश्नों के उत्तर देना उसे कठिन प्रतीत होने लगा उसने कहा कि उस समय उस विषय पर चर्चा न करना उचित होगा और जैसे ही वह पूर्णरूप से स्वस्थ हो जाएँगे, वह उन्हें सब कुछ बता देगी। लेव निकोलाएविच इस मौन का कारण समझ पाने में असमर्थ रहे। वह बोले, "लेकिन तुम जानती हो मेरे लिए, मेरी मानसिक शांति के लिए तुम जानती हो, यह कितना महत्त्वपूर्ण है।" और वह फिर रो पड़े। तात्याना ल्वोव्ना को करने के लिए कुछ नहीं था। उसने क्षमा मांगी और तेजी से बाहर निकल गयी। इस पूरे वार्तालाप के दौरान, जिसमें मैं मौजूद था, लेव निकोलाएविच ने अपने मन में आया एक शब्द नहीं कहा कि सोफिया अंद्रेएव्ना से मिलने में उन्हें परेशानी थी। उसी दिन, जब हम अकेले थे लेव निकोलाएविच ने फुसफुसाते हुए कहा कि मेज पर उनकी पॉकेट नोट बुक रखी है जिसमें उन्होंने अपनी गोपनीय बातें लिखी हुई थीं। एक ओर निजी बातें और दूसरी ओर अपनी बड़ी डायरी में देने के लिए कुछ नोट्स लिखे थे। उन्होंने निजी डायरी के पेज निकाल लेने (यह खुले पन्नों की नोट बुक थी) और पहले से ही निकाले गए पृष्ठों के साथ उसे रख देने के लिए कहा- डायरी के दूसरी ओर जिन विचारों को लिखा गया था, उन्हें उनकी बड़ी डायरी में नकल किया गया था। फिर उन्हेंने अपना बड़ा जर्नल (डायरी) लाने के लिए कहा और उस पर उन्होंने लिखना प्रारंभ किया। उस समय प्राइवेट डायरी के विषय में किए गए उनके अनुरोध को मैं पूरा कर रहा था।

लेव निकोलाएविच एक ओर सहारा देने पर अभी भी कमरे में दो-तीन कदम चलने में ही समर्थ थे। लेकिन जब वह बैठ जाते तब कमजोरी के कारण अपने हाथों से अपना सिर भी नहीं थाम पाते थे। मुझे याद है कि एक बार जब मैंने उनके सिर को सहारा दिया तब बहुत ही भावुक होकर उन्होंने मुझे धन्यवाद दिया था। उन्हें वापस बिस्तर तक ले जाते समय उन्हें थाम रखना बहुत आवश्यक था। फिर हम उन्हें बिस्तर पर लेटा देते, उनके पैर फैलाकर उन्हें कंबल से ढक देते। एक दिन जब हमने यह कार्य समाप्त ही किया था, जिसमें दो डॉक्टरों और मैंने भाग लिया था, लेव निकोलाएविच लेटने का प्रयास करते हुए हांफ रहे थे और शिथिल स्वर में बुदबुदाये थे, "किसानों के बारे में सोचो-किसानों के विषय में सोचो। कितना कठिन समय है वे मरणासन्न हैं!" और उनकी आँखों में आँसू छलछला आए थे। जब डॉक्टर कमरे से बाहर चले गए, मैंने कहा, "क्या आप बीमार और मरणासन्न उन किसानों की बात कर रहे हैं, जिनसे मिलने आप कुछ दिन पहले गए थे (मेरे दिमाग में वह दृश्य था जिसका चित्रण उन्होंने 'थ्री डेज इन अ विलेज' में

किया था)।" "हाँ हाँ" आंसुओं के बीच उन्होंने कहा- "और अब यह प्रतीत हो रहा है कि मुझे मेरे पापों के लिए मर जाना चाहिए।"

"नहीं, लेव निकोलाएविच" मैं बोला, "आप प्रेम से घिरे हुए हैं न कि पाप से। पाप से मुक्ति के लिए आपने वह सब किया जो आपके सामर्थ्य में था।"

एक दिन, उनकी मृत्यु से पहले उनकी बेटी तात्याना ल्वोव्ना रोती हुई और उत्तेजित स्थिति में उनके बिस्तर के पास से उस कमरे में आयी जहाँ हम विश्राम कर रहे थे और बोली, "उनके इन शब्दों को लिख लें, उन्होंने अभी मुझसे बहुत ही स्पष्ट स्वर में कहा : मैं केवल एक बात तुमसे कहना चाहूँगा, कि लेव तोल्स्तोय की तुलना में दुनिया में लाखों और लाखों लोग हैं, और तुम केवल उन्हें ही देखती हो।"

5. नवम्बर को, सुबह के ढाई बजे मैं जाग गया। मैंने उन्हें अपने कमरे में, जो मेरे कमरे से तीसरा था, ऊंचे और उत्तेजित स्वर में बातें करते सुना। मैं उछलकर बिस्तर से नीचे आया, जैकेट पहनी, पैरों में स्लिपर डाली और तेजी से उनके कमरे में गया और उन्हें बिस्तर पर तिरछे बैठे पाया। मैं उनके निकट गया और उन्होंने कहा कि वह कुछ डिक्टेट करना चाहते थे। मैंने अपनी नोट बुक निकाली। उन्होंने अपने विचार व्यक्त करने का प्रयास किया, लेकिन तभी बोले कि पहले मैं वह पढ़कर सुनाऊं जो वह पहले ही डिक्टेट कर चुके थे। मैंने कहा कि मैं अभी ही आया हूं और मुझे कुछ भी लिख लेने का पर्याप्त समय नहीं मिला। फिर उन्होंने कहा कि मैं वह पढ़ूं जो डॉ. सेम्योनोव्स्की ने लिखा था। सेम्योनोव्स्की ने, जो बिस्तर के बगल में बैठे थे, मुझ पर एक अर्थपूर्ण दृष्टि डाल अपनी नोट बुक मुझे दिखाते हुए संकेत में बताया कि उसमें कुछ भी नहीं लिखा गया था। तब मैंने अनुभव किया कि लेव निकोलाएविच सन्निपात की अवस्था में थे। उन्होंने पुनः मांग की कि मैं वह पढ़कर उन्हें सुनाऊं जो सेम्योनोव्स्की ने लिखा था। उसी समय सेम्योनोव्स्की सतर्कतापूर्वक उठे और कमरे से बाहर चले गए।

लेव निकोलाएविचः "कितना अच्छा हो कि आप उसे पढ़ें।"

मैं- "आपने कुछ भी नहीं लिखवाया लेव निकोलाएविच। मुझे बताएं आप मुझसे कहना क्या चाहते हैं ?"

लेव निकोलाएविच : (अधिक आग्रहपूर्वक): "पहले वह पढ़ें जो पहले बोला जा चुका है। आप उसे पढ़ना क्यों नहीं चाहते ?"

मैं : "लेकिन कुछ भी तो नहीं लिखा गया ।"

लेव निकोलाएविच :"(उलाहना भरे स्वर में) कितना आश्चर्य इतने सहृदय व्यक्ति, और फिर भी मुझे पढ़कर सुनाने से इंकार करते हो।"

ऐसा कुछ देर तक चलता रहा। तभी तोल्स्तोय की बेटी ने सलाह दी कि मेज पर पड़ी पुस्तक पढ़कर मैं उन्हें कुछ सुना दूं। वह 'अ साइकिल ऑफ रीडिगं थी' जिसे तोल्स्तोय सदैव अपने बगल में रखते थे और उससे दिन का अध्याय पढना नहीं भूलते थे। मैंने नवम्बर 5 की सामग्री खोज ली। जैसे ही मैंने पढ़ना प्रारंभ किया, लेव निकोलाएविच उस पर अपना पूरा ध्यान केन्द्रित करते हुए मूर्तिवत बैठ गए और बीच-बीच में मुझे कोई शब्द जिसे वह सुन न पाए थे दोबारा पढ़ने के लिए कहते रहे। और एक बार भी उन्होंने अपने विचार डिक्टेट करने के उद्देश्य से मुझे नहीं रोका। "यह किसने लिखा?" उन्होंने 'साइकल ऑफ रीडिंग' के किसी विचार के संदर्भ में तहकीकात की। जब मैंने समाप्त किया मैं रुक गया मैं डर रहा था कि वह थक गए होंगे।

उन्होंने क्षणभर इस बात की प्रतीक्षा की कि मैं आगे तो नहीं पढ़ना चाहता, फिर बोले, "अच्छा । फिर...." और फिर डिक्टेट करने की बात प्रारंभ करने ही वाले थे, अतः उन्हें पुनः उत्तेजित होने से रोकने के लिए मैं पुनः पढ़ने लगा, जिसे वह पुनः चुपचाप सुनने लगे थे। उसे दोबारा पढ़ा, देर तक पढ़ने के बाद मैं अपनी आवाज धीमी करते हुए मंद कर ली और उन्होंने स्वयं संभवतः थका हुआ अनुभव किया। उन्होंने केवल इतना ही कहा, "बहुत अच्छा," और पूर्णतया शांत हो गए। इस घटना ने लेव निकोलाएविच की स्पष्टतया दो असाधारण विशेषताओं को प्रकट किया। एक उनकी साहित्यिक प्रवृत्ति, जिसने उनके लिए यह अनिवार्य बना दिया था कि वह अपने मस्तिष्क की गतिविधि को दूसरों के साथ साझा करें। ऐसा करने के वह इतना अभ्यस्त हो गए थे कि बीमार होने पर स्वयं लिखने में असमर्थ वह अपने विचार डिक्टेट करने का आग्रह करते थे। दूसरों के विचारों पर अत्यधिक अभिरुचि और अत्यधिक सम्मान प्रदर्शित करना उनकी दूसरी प्रवृत्ति थी। पूरी जिन्दगी उन्होंने अपना अधिकांश समय अपने विचारों को दूसरों के लाभार्थ लिखने के लिए समर्पित किया था, लेकिन दूसरों के विचारों और दूसरों के आंतरिक अनुभवों से भी

उन्होंने स्वयं को परिचित कराया था या तो उनसे बातचीत करके या उन्हें पढ़कर। वह सदैव उनसे सीखते रहे थे।

अपनी इस अंतिम बीमारी के दौरान, क्या लेव निकोलाएविच अपनी मृत्यु की संभावना को अनुभव कर रहे थे ? यदि उन्होंने अनुभव किया, तो इसे उन्होंने किस रूप में ग्रहण किया ?

लेव निकोलाएविच बराबर आसन्न मृत्यु से अवगत थे। अपने जीवन के अंतिम समय वह कहा करते कि वह मृत्यु की दहलीज पर थे। जब भी वह बीमार होते वह सोचते कि वह उनकी अंतिम बीमारी थी। इसलिए इस बार भी सोचने का हमारे पास आधार था कि उन्हें मृत्यु की आशंका थी और वह उसके लिए तैयार थे। उनके द्वारा कहे गए कुछ शब्दों और मुहावरों से यह स्पष्ट था जो उन्होंने बीमारी के समय कहे थे। उदाहरणार्थ अनेका, बार उन्होंने सुस्पष्टरूप से कहा था, "हाँ, यह अंत है, सब कुछ समाप्त हो चुका है।" और "सब कुछ खत्म हो गया और मुझे उसका अफसोस नहीं है।"

एक बार अर्द्ध-सन्निपात की अवस्था में उन्होंने विनोदपूर्ण ढंग से कहा था, "खेल समाप्ति पर है। शिकायत नहीं।" इस अंतिम बीमारी के दौरान उन्होंने मृत्यु के विचार को उसी आत्मसंतोष के साथ स्वीकार कर लिया था। उनकी मृत्यु से कुछ दिन पूर्व जब हम अकेले थे, उन्होंने बहुत ही शांतिपूर्वक कहा कि संभवतः इस बार उनकी मृत्यु हो जाएगी। उन्होंने यह बात आंखों में शांति और प्रसन्नता के आंसुओं के साथ, न कि भय और दुख के साथ, बहुत ही संतोषपूर्ण स्वर में कहा था। एक रात मैं उनके बिस्तर के पास बैठा था और वह निर्निमेष मुझे देख रहे थे। मैंने कहा, 'देखो, लेव निकोलाएविच, आज आप कुछ बेहतर अनुभव कर रहे हैं।' वह कुछ बुदबुदाए, जिसे मैं सुन नहीं पाया, लेकिन बच्चों जैसे उनके स्वर और आंखों में चमकते आनंद के आंसू यह स्पष्ट कर रहे थे कि वह स्वस्थ नहीं, बल्कि मृत्यु को निकट अनुभव कर रहे थे।

और जिसके विषय में वह अत्यंत शांत और प्रमुदित भाव से बात करते थे। एक अन्य अवसर पर, लंबी नींद से जागने पर, उनकी आंखें मुझसे मिलीं और वह स्नेहपूर्ण ढंग से मुस्कराए।

"मैं खराब अवस्था में हूँ, बीमारी कम नहीं हो रही।" वह बोले।

"कभी-कभी ऐसा होता है बीमारी अपना कालचक्र पूरा करती है।" मैंने उत्तर दिया।

"तुम ऐसा सोचते हो ?" उन्होंने दिलचस्पी लेते हुए कहा और पुनः सो गए थे।

तथापि दूसरी गंभीर बीमारी के समय और इस बार मृत्यु के विषय में उनके व्यवहार में मैंने कुछ अंतर देखा था। पहले अवसरों में या तो वह मृत्यु की कामना करते थे या उदासीन रहते थे। इस बार, जब वह मृत्यु की संभावना को 'पूर्ण शांति' के साथ स्वीकार कर रहे थे, मैंने महसूस किया कि वह मरना नहीं चाहते थे।

यह समझना कठिन नहीं कि ऐसा क्यों था, अभी उन्होंने पूरी तरह जीवन को नए ढंग से जीने की ओर महत्त्वपूर्ण कदम उठाया था, जहां वह स्वतंत्र और कामगार लोंगों के साथ रहते, जिनके वह प्रशंसक थे, जिनके साथ बहुत कुछ वह साझा करते और मुक्त रूप से उनके साथ घुल मिल जाते। वह नए साहित्यिक कार्य के लिए ढेरों आइडियाज से परिपूर्ण थे और एक बच्चे की भांति इस प्रत्याशा से प्रसन्न थे कि वह अंततः अपने नैतिक दृढ़ विश्वास के साथ पूर्ण समन्वय के साथ रहने में समर्थ थे। और अचानक, उसी समय, बीमारी द्वारा वह शय्यासीन कर दिये गए। यह स्वाभाविक था कि पहले उन्होंने इसे उस मार्ग में पड़ी एक बाधा के रूप में देखा होगा, जिस पर हर परिस्थिति में चलने के लिए वह दृढ़ निश्चय थे। पहले वह अस्तापोवो में रुकना नहीं चाहते थे। उन्होंने अपनी बीमारी के बावजूद आगे बढ़ने के लिए आग्रह किया था। इस प्रकार की परिस्थितियों में, जब वह पूर्व अवसरों पर बीमार पड़े थे, वह मरना चाहते थे। उसके विपरीत अब वह जीना चाहते थे और अपने नए ढंग के जीवन में अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करना चाहते थे।

लेकिन यह उतना ही सत्य था जितना उनकी स्थिति की गंभीरता। इस प्रकार, यह क्या मेरी योजना में आ गया है, उन्होंने कांपते हाथों 3 नवम्बर को अपनी डायरी में लिखा था। 'Fais ceqhe doit] advienne que powrra" (एक फ्रांसीसी कथन-'सब कुछ अच्छे के लिए, दूसरों के लिए, और विशेषरूप से मेरे लिए है।') इन उत्कृष्ट शब्दों के साथ लेव निकोलाएविच की डायरी समाप्त हुई थी।

लेव निकोलाएविच की आध्यात्मिक प्रगाढ़ता उनके अंतिम दिनों में, शारीरिक कष्टों के बावजूद, समय-समय पर उनकी टिप्पणियों से प्रकट हो रही थी। उदाहरणस्वरूप, जीवन के अंतिम चौबीस घण्टों के दौरान

उन्होंने कहा था, "हाँ, यह भी अच्छा है", "सब कितना सामान्य और सुन्दर है," "यह अच्छा है- हाँ, हाँ' और भी इसी प्रकार की बातें।

इस तथ्य से समझा जा सकता है कि अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक जब वह पीठ के बल आंखें बंद किए निश्चल लेटे हुए थे, कठिनाई से सांस ले पा रहे थे, तब डॉक्टरों को आश्चर्यचकित करते हुए लेव निकोलाएविच ने चैतन्यता के चिह्न प्रकट किए थे, क्योंकि जब डॉक्टर ने उन्हें इंजेक्शन देना चाहा, उन्होंने उसके हाथ को धक्का दिया था अथवा जब उन्होंने चेहरे के पास की गई रोशनी को दूर हटा दिया था। इन चिह्नों को समझकर हम अनुमान लगा सकते हैं कि उन अंतिम घण्टों और मिनटों में वह अपने को 'महान परिवर्तन' के लिए तैयार कर रहे थे और तत्काल मृत्यु की प्रत्याशा में जीवित थे, जिसे उन्होंने बहुत पहले अनुभव कर लिया था।

लेव निकोलाएविच की मृत्यु इतनी गुप्त और शांतिपूर्वक आयी कि मैंने उसे सुन्दर-संतोषप्रद पाया।

अंतहीन घण्टों तक कठिनाई से सांस लेने के बाद अचानक वह हल्की और सहज सांस लेने लगे थे। कुछ मिनटों में यह मंद सांस बंद हो गयी थी। पूर्ण खामोश क्षण। कोई संघर्ष नहीं, कोई उग्रता नहीं। फिर आयी एक गंभीर दुर्बोध्य, मुश्किल से सुनाई देनी वाली उद्घास- अंत।

जैसे ही मैंने उस ढांचे पर दृष्टिपात किया जो लेव निकोलाएविच की आत्मा को धारण किए रहा था, मुझे उनके अंदर चलने वाली प्रक्रिया के कुछ शब्द याद आए जिन्हें मैंने बीती शाम संयोगत: सुने थे। मैं उनके बिस्तर के पास अकेला बैठा था। वह पीठ के बल लेटे हुए कठिनाई से सांसे ले रहे थे। अचानक उन्होंने ऊंचे स्वर में कहा, मानों अपने मस्तिष्क में चल रहे विचारों का सार प्रस्तुत कर रहे थे "मेरा सब कुछ मेरी अभिव्यक्ति पर्याप्त है वह सब कुछ है।"

समकालीन अभिव्यक्ति (त्रैमासिक)

(फार्म नं 4, नियम 8 के अनुसार स्वामित्व संबंधी विवरण)

समाचार-पत्र का नाम	: समकालीन अभिव्यक्ति
प्रकाशन अवधि	: त्रैमासिक
भाषा जिसमें प्रकाशित होती है	: हिन्दी
प्रकाशन का स्थान	: फ्लैट नं 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं। 7, महरौली, नई दिल्ली-30
संपादक का नाम	: उपेन्द्र कुमार मिश्र
नागरिकता व पता	: भारतीय, फ्लैट नं 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं। 7, महरौली, नई दिल्ली-30
मुद्रक का नाम	: उपेन्द्र कुमार मिश्र
नागरिकता व पता	: फ्लैट नं 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं। 7, महरौली, नई दिल्ली-30

उन व्यक्तियों के नाम व पता जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जे समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझीदार या हिस्सेदार हों–उपेन्द्र कुमार मिश्र, फ्लैट नं 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं। 7, महरौली, नई दिल्ली-110030

मैं उपेन्द्र कुमार मिश्र, एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार दिए गए विवरण सत्य है।

नई दिल्ली 12 मार्च, 2025

उपेन्द्र कुमार मिश्र

वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें

प्रोफ़ेसर वशिष्ठ अनूप

1.

कुछ जगत को बाँचने में, कुछ किताबों में कटी,
ज़िन्दगी कुछ अग्निपथ पर, कुछ गुलाबों में कटी।

एक उजली भोर की उम्मीद में चलता रहा,
प्रश्न थे बेहद कठिन जिनके जवाबों में कटी।

हर क़दम पर मुश्किलें मेरी प्रतीक्षा में रहीं,
प्यार का सपना सजाए इंक़लाबों में कटी।

जो बहुत नज़दीक रहकर दूर ही हरदम रही,
उम्र उसकी ही तड़प, उसके ही ख़्वाबों में कटी।

इक चमकते आवरण में दर्द का जमघट रहा,
कुछ ग़मों से गुफ्तगू में, कुछ हिसाबों में कटी।

2.

जन्म से ही मौत का आतंक मँड़राता रहा,
ज़िन्दगी भर कृष्ण का संघर्ष से नाता रहा।

रासलीला ही नहीं की गोपियों के साथ में,
लोकहित अन्याय से हरवक्त टकराता रहा।

छेड़ना, माखन चुराना तो बहाना मात्र था,
प्रेम था जो दर-बदर कान्हाँ को भटकाता रहा।

नेह था, पीड़ा भी थी, आँसू भी थे, मुस्कान थी,
बाँसुरी में जाने कितने राग वो गाता रहा।

भक्तजन, योगी-यती सब मुक्ति जिससे चाहते,
माँ के हाथों वह ख़ुशी से ख़ुद को बँधवाता रहा।

शांति की ख़ातिर मिला अपमान तो वह भी सहा,
धर्म का मंतव्य वह रण में भी समझाता रहा।

3.

बहारें गुनगुनातीं, ग़म का आईना नहीं मिलता,
तुम्हारे पास होने से, मुझे क्या-क्या नहीं मिलता।

तुम्हें देखा तो आँखों ने कहा बस मिल गई मंज़िल,
तुम्हारे दर से उठने का कोई रस्ता नहीं मिलता।

न वो रूहानियत दिल की, न भोलेपन का वो जादू,
तुम्हारे जैसा दुनिया में कोई प्यारा नहीं मिलता।

कभी मैं अप्सरा कहता, कभी मैं चाँद कहता हूँ,
हक़ीक़त में मगर तुझ-सा कोई चेहरा नहीं मिलता।

खड़ी बोली में अक्सर भोजपूरी का टपकता रस,
किसी से गुफ्तगू में वो तेरा लहजा नहीं मिलता।

यही इंसानियत का सार है, संतों की बानी है,
अगर अभिमान है तो प्रेम का सौदा नहीं मिलता।

हरेक इंसान में थोड़ी कमी होना ज़रूरी है,
बुराई पर नज़र हो तो कोई अच्छा नहीं मिलता।

4.

हर घड़ी एक अनुमान करना पड़ा ।
लक्ष्य का रोज़ संधान करना पड़ा।

शक्ति इंसान ने जब दिखाई कभी ,
देवताओं को सम्मान करना पड़ा।

राम हों कृष्ण हों भीष्म हों या कोई ,
वक़्त आया तो प्रस्थान करना पड़ा ।

वक़्त था जब बुरा सब ने क्या-क्या कहा,
रोज़ कितना गरलपान करना पड़ा।

तप की ताक़त नियति को बदल देती है,
शाप को छोड़ वरदान करना पड़ा।

जिनको कुंती ने समझा हँसी-खेल था,
हार कर उनका आह्वान करना पड़ा।

ऐसे दिन राम फिर ना दिखाएँ कभी ,
ऐसे-तैसों का गुणगान करना पड़ा।

विभागाध्यक्ष हिन्दी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी-221005
मो 9415895812 ईमेल vanoopbhu09@gmail.com

01
सच है तीखी ज़बान रखता हूँ।
मैं हथेली पे जान रखता हूँ ।

वक़्त को बाँचना ज़रूरी है,
इक मुकम्मल बयान रखता हूँ ।

ठोकरों से हूँ कब मैं घबराया,
सीख का हर निशान रखता हूँ ।

लौट आएंगे वे ख़ुशी के दिन,
हौसले की उड़ान रखता हूँ ।

हाँ, मुझे मेरी धरती प्यारी है,
फिर भी मैं आसमान रखता हूँ ।

02
हम ज़रा ख़ुद को बदल कर देख लें,
साथ तेरे हम भी चल कर देख लें।

जिन्दगी आसान करने के लिए,
वक़्त के साँचे में ढल कर देख लें।

रोशनी देनी है इस संसार को,
सूर्य जैसा आज जलकर देख लें।

ज़िन्दगी के ग़म भुलाकर आज हम,
क्यों न बच्चों-सा मचलकर देख लें।

हम यहाँ सबकुछ निगलना चाहते,
जो बुरा उसको उगल कर देख लें।

सत्यम भारती, प्रवक्ता (हिंदी)
राजकीय मॉडल इंटर कॉलेज
नैथला हसनपुर, बुलंदशहर
उत्तर प्रदेश, 203002
मो. 8677056002

कोई है साथ पर साथी नहीं है।
दिल ऐसे रिश्तों का क़ैदी नहीं है।

भले ही आप नावाकिफ हों खुद से
मुझे कोई गलतफहमी नहीं है।

थकन है सो उतर जाएगी जल्दी
मगर हिम्मत अभी हारी नहीं है।

किसी की जान का क्या रब्त इससे
किसी के माथे पर बिंदी नहीं है।

दुबारा स्नेह माँ वाला है दुर्लभ
अगर घर में कोई बेटी नहीं है।

बचाना ख़ुद को मेरे आँसुओं से
ये केवल आँख का पानी नहीं है।

बने रहना सदा अपनी नज़र में
कि इसके बाद कुछ बाक़ी नहीं है।
**

अंजू केशव
जमशेदपुर, झारखंड
8210046398
kanju.jsr12@gmail.com

1.
कभी जब बात नीयत की रहेगी ।
ज़रूरत आदमीयत की रहेगी।
रहेगा भाईचारा जब घरों में,
नहीं मुश्किल वसीयत की रहेगी।
हमेशा जीत लेगी दिल सभी का,
शराफ़त जो तबीयत की रहेगी।
निभाइ जाएगी अक्सर वही तो,
रिवायत जो जमीयत की रहेगी।

2.
यूँ सलीक़ा लिए पैग़ाम दिया जाता है।
नाम जो रोज़ सुबह शाम लिया जाता है।
काम वह क़ाबिले तारीफ़ हुआ करता है,
जो सही वक़्त पर अंजाम दिया जाता है।
चाँद ही वक़्त-बेवक़्त निकलता है मग़र,
बेवज़ह रात को बदनाम किया जाता है।
जी रहें हैं जताकर लोग सब हस्ती अपनी,
इक भला शख़्स क्यों गुमनाम जिया जाता है।
आप भर जायेंगे वो ज़ख्म सारे चोटों के,
हाल ही क्यों इन्हें मुद्दाम सिया जाता है।

नवीन माथुर पंचोली
अमझेरा, धार (मप्र)
मो 9893119724

डॉ. कविता विकास की ग़ज़लें

1.
काश उम्मीद की नहीं होती ।
मेरी दुनिया लुटी नहीं होती ।
ये अँधेरा कभी न छँटता गर
ज्ञान की रोशनी नहीं होती।
साथ सुख-दुख अगर नहीं होते
ज़िंदगी, ज़िंदगी नहीं होती।
कुछ ख़लिश, कुछ कशिश ज़रूरी है
इनके बिन शाइरी नहीं होती।
हम न ईमान से डिगे होते
दोस्त की जो ख़ुशी नहीं होती।
नाम क्या-क्या नहीं हमें मिलता
हममें गर सादगी नहीं होती।
दिल लगाके यही तो जाना है
प्यार में दिल्लगी नहीं होती।

3.
गुनगुनी से कड़ी हो गई।
धूप-सी ज़िंदगी हो गई
लौट आए हैं बच्चे मेरे
मेरी दीपावली हो गई।
सबकी ही फ़िक्र करते हुए
ख़ुद से मैं अजनबी हो गई।
खो गयी गूँज बच्चों की अब
सूनी हर इक गली हो गई।
द्वेष की अगलगी में सुलग
ख़ाक यह ज़िंदगी हो गई।
रात-दिन का नहीं ध्यान है
हद ये दीवानगी हो गई।
मेरी 'कविता' पढ़ी उसने है
हाय! मैं बावली हो गई।

3.
नर्म लहज़े में ज़रूरी बात का तेवर रखूँ ।
नीर आँखों में भले हो, आग भी अंदर रखूँ ।
राह से भटके हुए को जो दिखा दे रास्ता
चाहती हूँ एक ऐसा मील का पत्थर रखूँ ।
ज़िंदगी जिसके करम से आज तक चलती रही
गीत में उसकी ही महिमा के मैं दो अक्षर रखूँ ।
अपनी ग़लती पे तअस्सुफ़ करना आता है मुझे
नूर बाहर होगा जब अंतस भी मैं सुंदर रखूँ ।
रश्क़ करती हैं मेरी तन्हाइयाँ यह देखकर
तेरी यादों का भला क्यों साथ मैं लश्कर रखूँ ।
चाहकर भी कोई मुझसे जी चुरा सकता नहीं
पास अपने वह अदब-तहज़ीब का ज़ेवर रखूँ ।
गर मिलेगा मुझको वाज़िब-सा नहीं परिणाम तो
और ज़्यादा करके मेहनत पहले से बेहतर रखूँ ।

संपर्क :
फ़्लैट नम्बर-टी/1801, सेक्टर : 121, होम्स-121,
नोएडा-201301, उत्तर प्रदेश
ई मेल : kavitavikas28@gmail.com
मो. 9431320288

वीरेन्द्र नारायण झा की कविताएँ

सुरक्षित आदमी

बंद दरवाजे
बंद खिड़कियाँ
हवाओं को भी
मिलता नहीं सुराख
अंदर जाने के लिए
बर्फ की शक्ल में ठंड
ठहर गई है चौखट पर
भीतर के सारे रास्ते बंद हैं
रास्ते अगर खुलते भी
तो आग का कड़ा पहरा है
क्योंकि आदमी सुरक्षित है।

आज का आदमी

घर और दफ्तर के बीच
भागता-दौड़ता
ट्रैफिक में फँसा-कुढ़ता
आज का आदमी
घर से जल्दी निकलने की
आपा-धापी
दफ्तर पँहुच बॉस की टेढ़ी नजरों से
नजर बचाने की नाकाम कोशिश
करता आज का आदमी
घर की जिम्मेदारी
दफ्तर की मारामारी
दोस्त-कुटुम्ब की सरगोशी
माता-पिता की बीमारी।।
इन सब को निभाने में
न जाने
कब बूढ़ा हो जाता
आज का पिसता आदमी।

आज का मंत्र

मत दो हमें
हिंसा और अहिंसा का ज्ञान
नहीं चाहिए हमें
क्षमा और उदारता का वरदान
हमें सिर्फ इतना पता है
जो जैसा करेगा
वो वैसा भरेगा
राम की उदारता काम न आई
इसलिए रावण की लंका जली
कृष्ण की शांति वार्ता
कौरवों को रास न आई
इसलिए लड़ी गई
महाभारत की ऐतिहासिक लड़ाई
भय बिन होय न प्रीत
कह गए तुलसी-संत-फकीर
नहीं आने वाले हम
अब किसी के बहकावे में
मिटा नहीं पाए हम
कई मायनों में
आज भी गुलामी का कलंक
इसलिए अपनाया हमने
शठे शाठ्यम समाचरेत का मंत्र!

लोकतंत्र

जिस तंत्र में
नेता-जनता और
नौकरशाहों का हो
कभी न टूटनेवाला बंधन
वही है आज का गठतंत्र
न कि लोकतंत्र।

राजतंत्र

लोक के बिना
जब लोकतंत्र का
दावा किया जाता
फिर राजतंत्र और लोकतंत्र में
क्या फर्क रह जाता!

तीसरा तंत्र

एक ऐसा तंत्र
जहाँ हो न लोकतंत्र
और न राजतंत्र
सिर्फ और सिर्फ
क्रूर शासन-तंत्र।

दुविधा

हम वही देखने को बेचैन हैं
दिखाते रहे हैं वे
जो सदियों से
हकीकत दिखाने की अगर
कभी कोशिश भी हुई
तो हम उसे फसाना मान बैठते हैं।

रेनेसाँ

मंजूर नहीं उन्हें
किसी तरह का रेनेसाँ
मजहब में
जड़तावादियों को
कभी बरदाश्त नहीं नवजागरण
धर्म की राह में।

संपर्क :
ग्राम : समया, पत्रालय : मेंहथ - 847404, वाया : झंझारपुर, जिला : मधुबनी (बिहार)
मो. : 7903425262/9835295040
ईमेल : bnjha977@gmail.com

राजलक्ष्मी जायसवाल की कविताएँ

1. पुरुषत्व

एक समय के बाद
कुछ पुरुष....

किसी से कह नहीं पाते
अपनी नाकामयाबियाँ,
चिंता, दु:ख, भावनाएँ
भय, विचार और वेदनाएँ,

जिम्मेदारियों के बोझ तले
छुपा लेते हैं अपने अश्रु,
सागर-सा अथाह स्नेह
अपनी इच्छा और सारे सपने,

नहीं बताते मजबूरियाँ
बॉस की फटकार,
ग्राहकों की बदसलूकी
और मालिकों की गालियाँ

नहीं दे पाते स्त्रियों को
उनके हिस्से का प्यार,
क्यूंकि मजदूरों की भांति
सम्हालते हैं घर-परिवार,

अपने क़र्ज़ में, फ़र्ज़ में
मर्द धँस रहे हैं ऐसे जैसे,
सदियों से धँस रही हैं
हमारी प्राचीन सभ्यताएँ...!!

2. स्त्री व प्रेम

अकेली पड़ चुकी स्त्रियाँ
अपने लिए चुनती हैं,
रात, अंधेरा, मदिरा,
छत और छांव...

चीखती हैं उनकी सारी उदासीनताएँ
मुस्कुराती-सी ख़ामोशी के बीच,
मर जाती है उनकी भूख और चेतनाएँ
सूख जाती हैं उनकी सारी संवेदनाएँ...

रखती हैं मन के उदासी में
पाषाण-सा हृदय का भार,
करती है साँसों के घुटन में
किसी ताजा हवा का इंतजार...

उलझी हुई बैचेनियों के बीच
समंदर से भी गहरे भावों में,
हर संभावनाओं के साथ
छिपाती हैं अपनी अथाह वेदनाएँ...

लापरवाह मन के साथ
उनका घर भी उलझ जाता है
तड़फड़ाती मछली की भांति
प्यासी नदी के बीच....

प्रेम विहीन हुई स्त्रियां
जीवित तो होती हैं लेकिन,
उनमें कतरा-सा भी
जीवन शेष नहीं होता...!!!

3. ऋतुहीन

तुमने देखा कहाँ मुझे
सूरज ढलने के बाद,
प्रेम करते मुझे
हृदय में गढ़े प्रतिघातों से,
छलनी हुई पीड़ित आत्मा से,

अपनाना स्तुतियों की
क्रूरतम कृत्यता को,
जलाना दिए को, जो
बुझने को है आतुर,

तुमने देखा कहाँ,
हँसती आँखों के बाद
सैलाब आँखों का,
समा जाना सीने में
उमड़ती-घुमड़ती घटाओं का,
बेबाक होठों का हो जाना
अनायास मौन,

तुमने देखा कहाँ,
प्रेम-ज्वार में तपने के बाद,
अंतर्मन में लगे
भावों का घाव,
सुंदरतम, सुगंधिम
मधुवंती होकर,
कांतिहीन, प्रभावहीन
वृंतहीन 'मैं' को..!!

संपर्क
ग्राम + पोस्ट-लोधमा,
जिला-खूंटी,
राज्य-झारखंड-834004
मो. 8789711959

डॉ. संतोष पटेल की कविताएँ

नायाब हीरा

कितने दिनों तक रखेगा बादल
सूरज को आपने आगोश में
बादल की है क्या विसात
रोक ले कभी सूरज को चमकने से।

आखिर कितने दिनों तक रोक पाएगी
अमावस्या चाँद को
चाँदनी की दूधिया रोशनी में
चकता है एक दिन एवरेस्ट भी।

कितना बुनते रहोगे वाग्जाल
सत्य को ढकने के लिए
मालूम है बात बनाने में
कोई मुक़ाबला नहीं तुम्हारा।

वर्चस्व कायम रहे तुम्हारा
बनाए डाले तुमने काव्यशास्त्र
गढ़ डाली कई नियामकें
ताकि कोई आ ना सके बराबरी में।

लेकिन सूरज, चाँद और सत्य
छुपा है क्या कभी कहीं
भाषा के बाद ही आया है
कोई भी व्याकरण।

और जिन्हें भूख का व्याकरण
हो मालूम
जिनके रग-रग में शामिल हो
लोक की नियामकें
वह एक दिन
कोयले के खदान से निकल कर
चमकता ही है हीरे की तरह।

दिखना और दिखाना

कुछ लोग दिखते तो हैं
व्यवस्था, के विरोध में
लेकिन वही हैं
सबसे मजबूत कंधा व्यवस्था के
जिसपर टिकी होती है पूरी विचारधारा
घर की छत के नीचे
लगी शहतीर और कड़ी की तरह।

कुछ लोग बड़ी होशियारी से
भड़काते हैं अपने लोगों को
और फिर पूरे आकलन के बाद
हो जाते हैं सत्ता के साथ
उत्तर जाता है नक़ाब
वे बस लिखते हैं अपनी बात
नहीं देते किसी को कोई ज़बाब।

कुछ लोग दिखाते हैं अपने को
कि वे हैं वास्तव में क्रांतिकारी
सत्ता के विरुद्ध खूब लिखते हैं
धर्म विशेष का उड़ाते हैं मज़ाक
दूसरों की गिरा कर साख
खुद पा लेते हैं सत्ता सुख।

चेहरे के पीछे छिपे चेहरे को
पहचानना है मुश्किल
जैसे पानी में घुले नमक को
दूर से देख कर
कोई जान सकता है क्या
यह खारा भी होगा
सत्ता को गरियाने वालों का
सही पूछे तो
उसके पास सत्ता का ही नारा होगा।

इसलिए सही कहा गया है कि
हर चमकने वाली चीजें
सोना नहीं होती
दिखने और दिखाने में
अंतर तो होता ही है।

डॉ. संतोष पटेल, नई दिल्ली

प्रेमपत्र

ये क्या है?
चिट्ठी है।
प्रश्नवाचक चिह्न बना उसके चेहरे पर।
क्यों? इसकी क्या जरूरत है।
बस यूँ ही, मन किया तो लिख लिया।
रोज़ ही तो मिलते हैं। फिर और क्या रह गया कहने को?
पता नहीं, शायद वही सब लिखा हो, जो रोज़ कहता हूं।
पर लिखा है ये सोचकर की ये मिटेगा नहीं, भूलेगा नहीं।
तुम जो कहते हो तो वैसे भी अमिट है, लिखने की जरूरत नहीं।
कोशिश करूँगी सम्हाल कर रखूँ जीवन भर इसे।
लड़के के चेहरे पर भीगी-सी मुस्कान आई।
जीवन की साँझ में किसी किताब के पन्ने में
ये पीला पड़ा हुआ कागज़ मेरी याद दिलाएगा।
जब साथ न होंगे हम।
लड़की ने पर्स में रखते हुए
तीखी निगाह से
लड़के की ओर देखते हुए कहा-
तुमसे ही पढ़ाऊँगी इसे उस सांझ में, समझे।

संपर्क :
संजय मृदुल
भरत कुटीर, भावना नगर
चिल्फी हाइट्स के पास
रायपुर-04,
मो. 9098177600

अमरेश सिंह भदौरिया की कविताएँ

भगीरथ संकल्प

सूख चुकी थी पृथ्वी की देह,
नदियाँ बस नाम रह गई थीं,
बादल
जैसे किसी निर्वासित गाथा के भटके हुए अक्षर।
धरती की छाती पर
दरारें थीं,
भूख के नक्शे थे,
प्यास की चीखें थीं ।
तब...
एक अकेला उठा
नंगे पाँव, धूप से झुलसा ,
अग्नि पथ रचता हुआ!
उसने समय के देवताओं को नहीं मनाया,
न द्रवित किया किसी युग के भा ग्य को,
बस अपने कंधों पर उठा लिया
एक पूरे ब्रह्मांड का बोझ।
छेनी-हथौड़ी से नहीं,
अपने हठ से, अपने अश्रु से,
पर्वत की छाती को चीर डाला,
और धरती को दिया
जल, जीवन, गति ।
भगीरथ था वह
न किसी मंदिर में पूजित,
न किसी कथा में अलंकृत,
बस मिट्टी से उठकर
मिट्टी के लिए जिया ।
आज भी जब धरती रोती है,
आकाश थमता है,
तो एक भगीरथ
चुपचाप जन्म लेता है
अपने भीतर
संपूर्ण सृष्टि को संचालित कर देने के संकल्प के साथ।

धूल, धुआँ और सपने

कोलाहल भरी सड़कों पर
अनवरत दौड़ती गाड़ियाँ,
धूल और धुएँ से बोझिल हवा ,
हर चेहरे पर थकान की सिलवटें
जैसे ज़िंदगी
किसी अनजाने मोड़ तक भागती जा रही हो ।
सपनों का बोझिल थैला
कंधों पर लादे,
हर कोई अपनी-अपनी मंज़िल की
अनिश्चित तलाश में
निकल पड़ा है।
मशीनों का शोर
रिश्तों की खामोशी पर भारी है।
मोबाइल की नीली रोशनी में
डूबे चेहरे,
और आँखों में कैद
अकेलेपन की परछाइयाँ ।
हर दिल में एक अधूरी जगह है,
जिसे कोई भरे,
ऐसी चाह लिए
भीड़ में कोई किसी को
ढूँढता फिरता है।
फिर भी कहीं
किसी मोड़ पर
एक मुस्कान उगती है,
किसी अनजा ने का हल्का सा सहारा,
एक टकरा ती नज़र
जो कह जाती है
'मैं हूँ न।'
ये शहर
जो कभी सो ता नहीं,
जहाँ सपने सड़कों पर पलते हैं,
जहाँ उम्मीदें भी
धूल और धुएँ से लिपटी
जिंदा हैं।
हाँ कोई
यहाँ हर कोई है अकेला,
और फिर भी
हर कोई है साथ।
एक साझा तन्हाई
जो सबकी है
और फिर भी किसी की नहीं ।

सम्पर्क :
ग्राम एवं पत्रालय-
अजीतपुर, जनपद-रायबरेली, उत्तर प्रदेश-229206
मोबाइल : 8953755282
Email : amreshsinghhh@gmail.com

मुखौटा

* हरिशंकर राढ़ी

सह सम्पादक

वैसे तो बचपन में दशहरे पर होने वाली रामलीला में बहुत से मुखौटे लगाए थे, लेकिन मुखौटे के वास्तविक रहस्य का पता बड़ा होने पर लगा। लगा क्या, जैसे-जैसे बुढ़ापे की मंजिल की ओर खिसकता रहा, मुखौटे का महत्त्व बढ़ता रहा। रामलीला के मुखौटों में बंदर, भालू और राक्षस का वर्चस्व था। बाद में महसूस हुआ कि मनुष्य को इन मुखौटों की जरूरत दरअसल होती ही नहीं है। वह भ्रम के तहत इन मुखौटों को धारण करता है। बचपन के भोलेपन में मालूम ही नहीं होता कि आगे चलकर वह स्वाभाविक रूप से यही बनने वाला है। सच तो यह है कि उसे बंदर, भालू, राक्षस और चुड़ैल की असलियत को ढकने के लिए कुछ मानवीय मुखौटों की जरूरत पड़ती है। कुछ लोग जिन्हें रामलीलायी मुखौटे सूट नहीं करते, यानी निरा मनुष्य ही रह जाते हैं, उन्हें भी मुखौटों की आवश्यकता आन पड़ती है। मित्र बुद्धिराम जी ने बताया कि मुखौटे बिना मनुष्य की पहचान ही नहीं बनती। वह तो बस जनरल बोगी का गुमनाम यात्री रह जाता है।

यह समस्या मेरे ऊपर भी आन पड़ी। उम्र का अर्धशतक मार लेने तक एहसास हो गया कि इस एकमात्र प्राकृतिक चेहरे के कारण मैं गुमनाम ही रह गया हूँ। इस एकरस चेहरे से मेरे निज के कुटुंबीजन भी बोर हो गए, वसुधैव कुटुंब की तो मैं बात ही क्या करता ! जब भी टीवी पर किसी शख्सियत का चेहरा दिखता तो पत्नी मेरी तरफ ऐसी नज़र से देखती जैसे इस धरती पर एक मैं ही हूँ, जिसका जीवन वृथा गया। बकौल पत्नी, किसी का आना-जाना हो, कोई व्रत-त्योहार हो या किसी का शादी-विवाह, मुझे और तो और, खुश होना भी नहीं आता। पता नहीं कौन-सा मनहूस चेहरा लिए पैदा हुआ हूँ। जबसे माता जी गुजरीं, पत्नी का हौसला और बढ़ गया है, क्योंकि उसके इस आरोप को चुनौती देने वाला कोई रहा ही नहीं।

सोचा कि यदि सारे फसाद की जड़ यह चेहरा ही है तो क्यों न इसे ढक लिया जाए? अब इस उम्र में इसे बदल पाना या मौकानुसार दिखा पाना अपने वश का तो रहा नहीं। कटवा दूँ तो परिणाम देखने के लिए बचूँगा नहीं। कोई सुंदर नवयुवती भी नहीं हूँ कि किसी एकतरफा प्रेमी को इस कदर नाराज़ कर दूँ कि वह अपने खर्चे के तेजाब से बदला ले ले। संकट की इस घड़ी में मित्र बुद्धिराम जी एक बार पुन: काम आए। लंगोटिया यार हैं, सो बुद्धिजीवी होने के बावजूद मुझसे ईमानदारी से पेश आते हैं। उन्होंने मेरी समस्या को प्राणघातक रोग की भाँति लिया और सलाह देने के असली भारतीय मित्र का धर्म निभाया। छूटते

ही उन्होंने बताया कि हर पतिव्रता स्त्री के लिए उसके पति का चेहरा मनहूस होता है। वह उससे जितना ही ऊबती है, उतना ही नजदीक आती है। यदि वह आप पर लगातार आरोप लगाए जा रही है तो समझिए की उसकी निष्ठा आपके प्रति बढ़ती जा रही है। आप पत्नी पर आरोप नहीं लगाते, इसलिए उसके तथा अन्य सुंदरियों के प्रति अपनी निष्ठा का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

मामला आईने की तरह साफ हो जाएगा। यह कहानी घर-घर की है, इसलिए स्वयं को अकेला मत समझिए। उनके इस रहस्योद्‌घाटन ने मेरे भयंकर दर्द में पेन किलर का काम किया।

दीर्घकालिक सुख के लिए उन्होंने सलाह दी कि मुझे कुछ मुखौटे खरीद लेने चाहिए, जिसे अवसर एवं रुचि के अनुसार प्रयोग में लेना चाहिए। मनोविज्ञान के माहिर बुद्धिराम जी ने प्रमाण भी दिया। यह कि बचपन में मुखौटे लगाकर कितना आनंद आता था, यदि वैसा ही आनंद चाहिए तो मुखौटे लगाओ। सलाह जँचनीय थी, सो अमल का निश्चय कर बाजार की तरफ मुड़ लिया- कुछ अच्छे मुखौटों की तलाश में।

तो घर जाने से पहले मैंने बाजार का रुख किया। सोचा कि मुखौटे की शुरुआत अपने घर से ही करूँ। सबसे ज्यादा बेमुखौटा या अधनंगा अपने घर ही रहा हूँ। यही कारण है कि पत्नी बहुत सुनाती रहती है और रोब झाड़ती रहती है। लेकिन मेरे लोकल बाजार में मुखौटे की दुकान ही नहीं। यहाँ तो बस परचून, नकली दूध और रासायनिक सब्जियों का बोलबाला था। एकाध दुकान कामचलाऊ कपड़ों की थी, जिनमें बगैर ब्रांड वाले सामान बिकते हैं। कई दुकानों पर पूछा। सबका एक ही जवाब-जनाब, हमारी इतनी औकात कहाँ कि मुखौटे रखें? मुखौटे तो अभिजात बाजारों, ब्रांडेड फैशन के आउटलेट्स और मॉल में मिलते हैं। हम तो बस रामलीला के समय बंदर, भालू और राक्षसों के दस रुपए मूल्य वाले मुखौटे ले आते हैं। इन्हें बच्चे लगाते हैं। बच्चे क्या मुखौटे और क्या बिना मुखौटे के ! लिहाजा, अपना वही पुराना मुँह लटकाए एक बार फिर उसी पत्नी के घर !

मुखौटों की सुविधा ऑन-लाइन भी नहीं दिखी। अपने तई प्रयास कर लेने के बाद निराश होकर फिर बुद्धिराम जी को फोन किया। इस बार वे ठठाकर हँसे। बोले- "यार, तुम तो मुखौटे के लायक भी नहीं हो। तुम्हें इतना तो मालूम हो जाना चाहिए था कि ये बड़े लोगों की चीजें हैं। उन्हें पूरे सार्वजनिक जीवन में यावज्जागृत अलग-अलग किस्म के मुखौटों की जरूरत पड़ती है। यहाँ तक कि पत्नी और बच्चों के भी सामने जाने के लिए एक अदद सज्जन-सच्चरित्र के मुखौटे की जरूरत होती है। ये बड़े लोगों के शौक हैं और बड़ा वही है, जिसके पास पैसा है। सो तुम्हें कैसे लगा कि अपनी मंगल बाजार में मुखौटा मिल जाएगा ?" जरूरी चुप्पी के बाद मैंने क्षमा-याचना के स्वर में मुखौटा-केंद्र की जानकारी देने की प्रार्थना की। बुद्धिराम जी ने

फरमाया कि यदि मुझे औसत मुखौटे चाहिए तो किसी भी फैशन ऑर्केड में जाना चाहिए। लेकिन सर्वोत्तम मुखौटे एक जगह पर नहीं मिलते। उसके लिए मान्यता प्राप्त विशेष मुखौटा केंद्र हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे एक एम.बी.बी.एस. डॉक्टर हर मर्ज़ की दवा दे देता है, किंतु एक हड्डी विशेषज्ञ एम.डी. साधारण बुखार को भी हाथ नहीं लगाता। वह किसी अन्य विशेषज्ञ को रेफर कर देता है। जो जितने कम क्षेत्र की जानकारी रखता है, वह उस क्षेत्र उतना ही बड़ा विशेषज्ञ होता है। इसलिए यदि विशिष्ट मुखौटे लेने हैं तो विशिष्ट केंद्रों पर जाना पड़ेगा।

बकौल बुद्धिराम जी, साहित्यकार का मुखौटा लेना है तो हिंदी या अन्य भाषायी अकादमियों, साहित्य अकादमियों, विश्वविद्यालयों के भाषा विभागों और लब्धप्रतिष्ठ संपादकों के इर्द-गिर्द जाना पड़ेगा। साहित्यकार के मुखौटे वहीं मिलते हैं। ऐसे मुखौटों की माँग अधिक नहीं है। इनकी कीमतें कम हैं। सबसे अधिक माँग राजनेताओं के मुखौटों की है। ये मुखौटे जनपथ के आस-पास मिलते हैं। मैंने बुद्धिराम जी को टोका- "नेता तो राजपथ पर या राजसी गोलभवन में रहते हैं, फिर इनके मुखौटे जनपथ पर क्यों मिलेंगे ?"

इस बार मित्र महोदय फोन पर ही डपट पड़े - "एक नंबर के मूर्ख हो। एक बात बताओ, आज तक किसी गरीब की झोंपड़ी पर 'अमर विला', 'समर विला' या 'कमर विला' लिखा हुआ देखा ? जबकि विला का मतलब झोंपड़ी होता है, इतना तो आप भी जानते हैं। यह तो बड़ी-बड़ी कोठियों और बंगलों पर संगमरमर की तख्ती पर सुनहरे अंगरेजी अक्षरों में लिखा होता है न ? आज तक किसी गरीब को यह कहते हुए सुना कि हमारे गरीबखाने पर तशरीफ लाइए ?

ऐसी मुखौटावादी भाषा का प्रयोग अमीर ही करता है न ? इसी तरह राजपथ पर रहने वाले अपने पथ का नाम जनपथ लिख लेते हैं। इससे देश की मतदायक जनता को लगता है कि हमारे प्रतिनिधि हमारी तरह जनपथ और वनपथ पर रहते हैं। उसे अपने नेता की सरलता पर गर्व होता है। जैसे ही जनता को अपने नेता पर गर्व होने लग जाए, उसकी जीत पक्की। भले ही वह कुछ करे न करे।"

डरते-डरते मैंने बुद्धिराम से कुछ और मुखौटों के विकल्प पूछे। उन्होंने बताया कि आजकल बाबाओं के मुखौटे बहुत सफल हैं। इसमें तो मनुष्य के देवत्व पर कोई संदेह ही नहीं रह जाता। स्वर्ग के सारे सुख यहीं बरसने लगते हैं। जीवन नंदन कानन हो जाता है। हाँ, चूँकि मामला स्वर्ग का है, जो धरती पर मुश्किल से मिलता है, इसलिए इसकी संभाल कुछ दिनों बाद मुश्किल हो जाती है। कुछ बाबाओं के मुखौटे इधर पारदर्शी हो गए, जिससे वे जेलवासी हो गए। इन इक्की-दुक्की घटनाओं के बाद बाबायी मुखौटों के शेयरों में कुछ गिरावट दर्ज की गई है। लेकिन हिंदुस्तान की जनता की विस्मरण शक्ति पर भरोसा रखो। सब ठीक हो जाएगा। साथ में यह भी कि बाबाओं के मुखौटे बड़े धर्मस्थलों, मठों एवं अध्यात्म केंद्रों के आस-पास के आउटलेट्स पर मिलते हैं।

मैं चुप रहा तो बुद्धिराम भाँप गए कि मैं कुछ अन्य विकल्पों की तलाश में हूँ। मेरी शंका को निर्मूल करते हुए एक छँटे हुए ज्ञानी की भांति उन्होंने मुझे साधिकार सीख दी कि अन्य प्रकार के मुखौटे अगर मिल भी गए तो उन्हें मैं संभाल नहीं पाऊँगा, क्योंकि उपरोक्त मुखौटों को छोड़कर अन्य में वास्तविक प्रतिभा एवं आइंस्टाइनी बुद्धिलब्धि की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ, मुखौटा लगाकर मैं एक सफल चिकित्सक, प्रसिद्ध खिलाड़ी या दबंग वकील नहीं बन सकता। बाकी टीचर-सीचर, व्यापारी-दूकानदार तो कोई भी बन सकता है। उसके लिए मुखौटे की जरूरत ही नहीं होती। मुखौटा केवल उच्च पदों और उच्च रिश्तों के लिए होता है।

बुद्धिराम जी की सारगर्भित बातें सुनकर अपने लिए मैंने एक स्वर्णिम भविष्य की कल्पना की। अगले दिन मुखौटा आउटलेट्स की तलाश में महानगर का रुख करने की प्रत्याशा में सो गया।

साहित्यिक मुखौटों का शोरूम भाषा अकादमी के भूतल पर था। प्रवेश किया तो देखा कि अलग-अलग नाप, रंग और मुखाकृति के मुखौटे दीवारों पर सजे हुए थे। इससे पहले कि मैं कुछ समझने का प्रयास करूँ, संचालक मेरी ओर आया। बोला-"आप नए हैं न इधर? कौन सा मुखौटा चाहिए आपको ?"

"आपको कैसे पता कि मैं नया हूँ इधर ? काफी दिनों से मैं भी लिख रहा हूँ।" मैंने गला साफ करते हुए कहा। "मुखौटे की दूकान पर नए ही आते हैं। जो पुराने हैं, उनके पास अपना खुद का मुखौटा है अब। यह बात अलग है कि किसी जमाने में उन्होंने भी मुखौटा यहीं से खरीदा था। खैर, छोड़िए। आपको किसका मुखौटा चाहिए-कथाकार, कवि, व्यंग्यकार या आलोचक का?"

मैंने प्रश्नवाचक नज़रों से देखा तो संचालक जी बोले-"मेरी मानिए तो व्यंग्यकार या आलोचक का मुखौटा ले लीजिए। अखबारों, पत्रिकाओं में स्तंभकार के रूप में जगह बनानी है तो व्यंग्यकार आजकल सबसे अधिक मुफ़ीद है। लेखकों में लोकप्रिय और महत्त्वपूर्ण बनना है तो आलोचक का ठीक रहेगा। घटिया से घटिया या सबसे बढ़िया लेखक भी आपका मुखापेक्षी रहेगा। आजकल इनके भाव बढ़े हुए हैं, क्योंकि लिखने वाले बढ़ रहे हैं और पढ़ने वाले घट। हजार-दो-हजार रुपये की पुस्तकें समीक्षार्थ मुफ्त। चाहा तो किसी साहित्यिक वितरक को पटाकर उससे भी हजार दो हजार की कमाई शुरू। ठीक वैसे ही जैसे पंडित-पुजारी दक्षिणा में मिली धोतियाँ, साड़ियाँ और

साहित्यिक मुखौटों का शोरूम भाषा अकादमी के भूतल पर था। प्रवेश किया तो देखा कि अलग-अलग नाप, रंग और मुखाकृति के मुखौटे दीवारों पर सजे हुए थे। इससे पहले कि मैं कुछ समझने का प्रयास करूँ, संचालक मेरी ओर आया। बोला-"आप नए हैं न इधर ? कौन-सा मुखौटा चाहिए आपको ?" "आपको कैसे पता कि मैं नया हूँ इधर ? काफी दिनों से मैं भी लिख रहा हूँ।" मैंने गला साफ करते हुए कहा। "मुखौटे की दुकान पर नए ही आते हैं।"

बरतन किसी अपने दुकानदार को बेचकर कमा लेते हैं।

कहानीकारों का जमाना अब रहा नहीं। न वे पत्रिकाएँ रहीं और न वे संपादक। आम आदमी अपने घर की कहानी से परेशान है, किताबी कहानी कहाँ तक पढ़ेगा ? मोबाइल, यू-ट्यिूब और वयस्क फिल्मों का जमाना है। अब किसके पास समय है कि आपके पन्ने चाटता फिरे? अब तो अखबार-पत्रिका वाले भी आपकी कहानी को अधिया-बधिया करके छापते हैं। आधे पृष्ठ में किसी उत्तेजक विज्ञापन से अपनी बिक्री बढ़ाते हैं।"

मुझे लगा कि संचालक को साहित्य की नस-नस का पता है। सो मैंने छेड़ा-"और कवि का मुखौटा कैसा रहेगा ?"

"पूछिए मत साहब। मैंने तो ऐसा माल मँगाना ही छोड़ दिया है। कोई माँग ही नहीं रही कवि के मुखौटे की। तुलसी-कबीर जैसे जनकवि रहे नहीं। नागार्जुन-मुक्तिबोध भी अब किसी की समझ में नहीं आते। विश्वविद्यालयी कवियों ने एक दूसरे को ही नहीं समझा, जनता तो क्या समझेगी ? ले-देकर बचे हैं कुछ मंचीय कवि। उनमें मुखौटा चलता नहीं, नकलबाजी और हुनरबाजी के बिना कवि सम्मेलन हो नहीं सकता। मसलन, आपको चुटकुलों में महारत होनी चाहिए। मिमिक्री आती हो तो सोने में सुहागा। मंच पर सबसे ऊपर स्टैंड-अप कॉमेडियन सुशोभित हो रहे हैं। या तो आप आकर्षक चेहरे की नवयौवना हों। कविता के यही नए प्रतिमान हैं। लाखों की कमाई है। अब अपनी बोझनुमा जिंदगी को घसीटता हुआ कोई श्रोता आपका जीवन-दर्शन झेलने या क्रांति की मशाल जलवाने थोड़े ही आएगा ? उसे मनोरंजन चाहिए, मनोरंजन। मनोरंजन में साहित्यिक मुखौटे नहीं चलते।"

"लेकिन आलोचक का मुखौटा लगा लेने मात्र से मैं आलोचक तो नहीं हो जाऊँगा!" मैंने कुछ झुंझलाकर कहा।

"यदि आप मौलिक रूप से इतने माहिर थे तो मुखौटे की तलाश में निकले ही क्यों? आप अपनी असलियत से ही तंग आकर मुखौटा लेने निकलें हैं न? देखिए, समझदार बनने की कोशिश करिए। इस समय आलोचक के मुखौटे पर एक बहुत अच्छा ऑफर आया है। मुखौटे के साथ एक आदर्श आलोचना पुस्तिका मुफ्त दी जा रही है, जिसमें हर विधा की रचना की आलोचना या समीक्षा का आदर्श उदाहरण दिया हुआ है। आप रिक्त स्थानों में रचना का शीर्षक और लेखक का नाम फिट करते हुए चले जाएँ, एक अच्छी समीक्षा तैयार हो जाएगी। एक समीक्षोपयोगी विस्तृत शब्दावली भी दी गई है, जिसका प्रयोग आप विकल्प के रूप में कर सकते हैं। यदि आप एक सौ रुपये अतिरिक्त जमा करके हमारे सदस्य बन जाते हैं तो आलोचना पर एक सीडी मुफ्त देने की योजना है। यह ऑफर सीमित समय के लिए है।"

मेरा मुँह उतर गया और दुकानदार समझ गया कि इसके बस का साहित्यकार बनना नहीं है। सोचा कि क्यों न नेता वाला ही ट्राई करके देख लूँ। सो बुद्धिराम जी के द्वारा दी गई सलाह के अनुसार मैं जनपथ की ओर चल पड़ा।

वहाँ पर भटकना नहीं पड़ा। लबे रोड मुखौटों का एक विशाल शोरूम दिख गया। शोरूम की बाहरी दीवार पर दोनों ओर विशाल नज़रबट्टू चिपके

हुए थे और ऑटोमेटिक स्लाइडिंग डोर के साथ एक जोड़ी नींबू-हरी मिर्च की मालाएँ लटक रही थीं। बाहर एक बड़ा-सा साइनबोर्ड टँगा था, जिस पर बड़े अक्षरों में 'लोकतांत्रिक मुखौटा' लिखा हुआ था। संभवत: रात में यह शब्दावली चकमक शैली में चमकती भी होगी।

विक्रयबाला ने मुझे समझाना शुरू किया- "देखिए सर, अगर आप सबसे सस्ता मुखौटा चाहते हैं तो ये वाले लीजिए। ये वामपंथी मुखौटे हैं। इसको पहनने से आपके मन में एक ही विचार आएगा कि किसान मजदूर को उसका हक नहीं मिला है। उसे आजादी चाहिए, मगर कैसे और किससे, यह पता नहीं। कभी इनकी माँग बहुत अधिक हुआ करती थी। इनका क्रेज था। अब ये आउटडेटेड होते जा रहे हैं। इनमें माल अभी वही आ रहा है। सो जनता इनसे बोर हो गई है। इनका विस्तार सिमटता जा रहा है। यहाँ तक कि जहाँ विकल्प नहीं हैं, वहाँ भी लोग इन्हें देखकर आँखें बंद कर ले रहे हैं। ये मुखौटे तो अभी पिछले चुनाव तक आधी छूट पर थे। इस चुनाव में सेल पर लग गए थे, फिर भी बिक्री नहीं हुई। आप चाहें तो आपको सेल के अतिरिक्त एक पर एक फ्री दे सकते हैं। क्लीयरेंस करना है हमें।"

फिर जब उसने देखा कि उसका मालिक इधर नहीं देख रहा है तो फुसफुसाकर बोली- "वैसे सर, मेरी मानें तो इसे लेने की सलाह आपको नहीं दूँगी। आखिर आप भी मेरी तरह एक आम आदमी हैं।"

मुखौटों का दूसरा सेक्शन समाजवादी और क्षेत्रवादी विचारधारा का था। उसने बताया कि ये मुखौटे वामपंथ वाले माल से ही बने हैं, बस फिनिशिंग जरा बढ़िया और नई है। ऊपर से तो बहुत अच्छे हैं, लेकिन इनमें खुजली की शिकायतें अधिक आती हैं। इनमें दो ब्रांड अधिक तगड़े और प्रभावी हुआ करते थे- एक तो सिर्फ समाजवादी और दूसरे बहुजन समाजवादी। इनमें से पहले ब्रांड का उत्पादन एक खास पहलवान ने किया था, जिसे बाद में पूरे परिवार ने संभाल लिया था। इसे बनाने का पेटेंट उसी परिवार के पास है। बहुजन समाजवादी कंपनी का शिलान्यास एवं उत्पादन तो किसी ने शुरू किया था, बाद में एक वीरांगना ने वसीयत लिखवा ली। समाजवादी मुखौटा जहाँ हर अनुयायी पहन सकता है, बशर्ते वह उत्पादक परिवार के प्रति निष्ठावान हो, वहीं बहुजन समाजवादी का मुखौटा मनुयायी को सूट नही करता। हाँ, इन दोनों मुखौटों में एक समानता है कि इनमें एक चिप लगी है, जिससे मुखौटाधारी दल के विरुद्ध नहीं जा सकता। (वैसे तो प्रयोग विधि का विस्तृत विवरण मुखौटे के साथ दिए जाने वाले मैनुअल में है) इन मुखौटों को पहनकर आप अभिजात समाज के समर्थन में नहीं बोल सकते। यहाँ तक कि उनके मरने-करने में भी नहीं जा सकते। इसके विरुद्ध यदि अल्पसंख्यक वर्ग में किसी की उंगली भी छिल जाए तो जाना जरूरी होता है। विक्रयबाला ने यह भी बताया कि इन मुखौटों की कीमत में गिरावट दर्ज की गई है, जिससे इन पर भी डिस्काउंट और कैशबैक ऑफर चल रहा है। इन मुखौटों को क्रमश: हरे और नीले रंग के डिब्बों में पैक करके रखा गया था।

तीसरा कक्ष गेरुआ रंग के डिब्बों से भरा था। इसमें तिल रखने की जगह नहीं थी, फिर भी नया माला आता चला जा रहा था। बालिका ने बताया कि इस कंपनी का नवीनीकरण हुआ है। इनके निदेशक समय-समय पर बदलते रहते हैं, किंतु वर्तमान में यह बहुराष्ट्रीय कंपनी के तर्ज पर चल रही है। लाभ ही लाभ है, इसलिए निदेशक को अपने पद पर रोके रखा हुआ है। इस कंपनी की अपनी रिसर्च एण्ड एनालिसिस विंग है, जिसकी गाँव-गाँव में शाखाएँ लगती हैं। डोर-टू-डोर कैंपेन है। इसने हाल में ही अंगरेजों के जमाने की कंपनी को उखाड़ फेंका है। कर्मचारियों की छँटनी हो चुकी है। यहाँ तक कि निदेशक का परिवार भी बिखर गया है। यह वामपंथ की दुश्मन मानी जा रही है। इसके बढ़ते प्रभाव के कारण बाकी कंपनियाँ आतंकित हैं। गेरुआ रंग का प्रकीर्णन जोरों पर है।

इस समय इसके मुखौटों पर कोई ऑफर नहीं है। कीमत भी ऊँची है, फिर भी बिक रहा है। जिन लोगों ने अहमन्यता के चलते इसका मुखौटा उतार दिया था, वे मुखविहीन हो चले हैं। इसका मैनुअल भी छोटा है। दो-तीन बातें याद रखनी हैं। एक तो यह कि प्रबल राष्ट्रवादी बनना है। इसके लिए आप राष्ट्रगान, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रीय चिह्नों का सम्मान कर लें। सरकार के हर फैसले के समर्थन में खड़े हो जाएँ और एक-दो जय बोलते रहें।

वहीं एक अंदरूनी कक्ष में कुछ रंगहीन मुखौटे रखे हुए थे। वे इतने पारदर्शी थे कि पता ही नहीं चल रहा

था कि इनका अस्तित्व भी है। एकदम भारशून्य और भावशून्य। हैरानी की बात यह कि उनकी कीमत बहुत अधिक थी।

मैंने विक्रयबाला की ओर देखा तो उसने अपने संचालक को बुलाया। संचालक बोला– "देखिए साहब, ये अत्याधुनिक तकनीक के ऐसे मुखौटे हैं, जो अपने लोकतंत्र में सर्वाधिक फिट बैठते हैं। इनमें माहौल को भाँपने की शक्ति है और चुनावों के समय स्पष्टत: बता देते हैं कि किस दल को सत्ता मिलने जा रही है। इन्हें आप लेंस की भाषा में ऑटो फोकस कह सकते हैं। अन्य मुखौटों की भाँति इन्हें दल और निष्ठा बदलते समय बदलना नहीं पड़ता। इनमें आंतरिक वातानुकूलन है। ये विरोधी दलों के राडार पर नहीं आते और आप कई दलों में बने रह सकते हैं। नेताओं की तो छोड़िए, इनकी सर्वाधिक माँग सफल और रसूखदार अफसरों में है। जिन्होंने जी–मरकर इन मुखौटों को खरीद लिया है, वे हर सरकार में वांछित पद के भागी होते हैं। अभी आपने देखा होगा कि एक दल के कुछ समर्पित और फायर ब्रांड नेता दूसरे दल में शामिल हुए थे। उन्हें एक मानसिकता से दूसरी मानसिकता में ढलने में निमिषमात्र नहीं लगा था। जिसके तलवे चाट रहे थे, उसे तार्किक गालियाँ देने लगे और जिनको गाली देकर सुबह उठते थे उन्हें अगरबत्ती दिखाने लगे। इसे पहनने वाला हर सरकार में मंत्री होता है, इसकी गारंटी है।" मुझे पसंद तो यही मुखौटा आया था, किंतु मैं न तो सरकारी अफसर था और न नेतापुत्र कि इसे खरीदने की औकात रखता, सो मन मसोस कर संचालक की मौन गालियाँ खाता हुआ बाहर आ गया।

मन में विरक्ति का भाव था। सो एक विशाल मठ की ओर चल पड़ा। वहाँ पर दुकानदार ने दो तरह के मुखौटे दिखाए। एक तो पारंपरिक लंबी दाढ़ी–मूँछ वाला और एक सफाचट मुँह वाला। दाढ़ी–मूँछ वाले मुखौटे से सन्यास, वैराग्य, ज्ञान, भक्ति और अध्यात्म टपक रहा था। देखते ही किसी पहुँचे फकीर का आभास हो रहा था। मगर उसकी कीमत सफाचट वाले से कम थी। सो जिज्ञासा हुई। जब बाबा ही बनना है तो दाढ़ी वाला बनें, सफाचट वाला क्यों ?

अब दुकानदार मुझे एक तरफ ले गया। बोला – "आप इस धंधे में नए आने वाले लग रहे हैं। आपको धर्म और शास्त्रों का पुराना ज्ञान है, किंतु आपको इसका व्यापार करना नहीं आता। मुखौटे व्यापार करने के काम आते हैं। यदि आप वास्तविक संत पुरुष हैं और अपना परलोक बनाना चाहते हैं तो यह काम आप अपनी झोंपड़िया में बैठे कर सकते हैं। बस, आपको तब कोई जानेगा नहीं! मुखौटे तो अगणित भक्त, बाबालोक, स्वर्गाश्रम और इहलोक बनाने के लिए आवश्यक होते हैं, जो बिना असली चेहरा छुपाए हो नहीं सकता।

अब रह गई दाढ़ी वाले मुखौटे के सस्ते होने की बात तो लगता है कि आप न अखबार पढ़ते हैं और न टीवी देखते हैं। बात दरअसल यह है कि पिछले दिनों कुछ दाढ़ी वाले बाबा अपनी अंदरूनी रासलीला के प्रकटीकरण हो जाने के कारण कन्हैया जी के जन्मस्थान में कैद हो गए हैं। अत: दाढ़ीवाले बाबाओं से किताबी अनपढ़ों का विश्वास घटा है। दूसरा कारण यह है कि जब कोई 'मासूम' नवभक्तनी बाबा जी के 'अध्यात्म' और शारीरिक 'नश्वरता' की सीख के कारण खुद को उनके चरणों में समर्पित करती है तो ये सफेद दाढ़ी उस नवयौवना को दूर धकेलने का प्रयास करती है। उसे एहसास होने लगता है कि बाबा जी ईश्वर के कितने भी नजदीक क्यों न पहुंचे हों, चौथेपन में पहुँचने के कारण प्रेमार्थक नहीं रह गए हैं। दूसरी ओर बिना दाढ़ी वाले मुखौटों से यह संदेश जाने लगा है कि ये बाबा जी दिखावे के लंद–फंद में न पड़कर सादा जीवन उच्च विचार को जी रहे हैं। इससे सामान्य भक्तों की संख्या और भक्ति में बढ़ोतरी होती है। यदि कोई बाला बाबा जी की 'आध्यात्मिक यात्रा' का रिफ्रेशमेंट बनना चाहती है तो उसे दाढ़ी का दंश नहीं झेलना पड़ता। इसलिए मुखौटों की दर में अंतर दिखेगा। बाकी इन मुखौटों में ऐसी चिप लगी है कि सत्संग में प्रवचन क्या देना है, भजन कौन–सा गाना है, यह सब समायोजित है। आपको बस होंठ हिलाते रहना है।"

"तो बिना चिप का मुखौटा धारण करने वाले बाबाओं ने आज तक कौन–सा मौलिक विचार दे दिया? वे भी तो होंठ ही हिलाते रहते हैं।" ऐसा भुनभुनाते हुए मैंने अपने घर की राह ली। मुझे अपनी समस्याग्रस्त गृहस्थी, कड़वी पत्नी और बिना मुखौटे का खूसट चेहरा अच्छा लगने लगा। कम से कम अपना तो है !

❋❋

लेखक का आत्मकथ्य

* सुभाष राय

जन्म : जनवरी 1957 (उत्तर प्रदेश के जनपद मऊ में)
शिक्षा: आगरा विश्वविद्यालय से हिन्दी भाषा और साहित्य में पीएच.डी., नेट, विधि स्नातक।
सृजन : चार दशकों से पत्रकारिता। अमृत प्रभात, आज, अमर उजाला जैसे प्रतिष्ठित दैनिक समाचार-पत्रों में शीर्ष जिम्मेदारियाँ। कुछ काव्य संग्रह और अक्क महादेवी की जीवनी जैसी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित। कई साहित्यसेवी संस्थाओं की ओर से सम्मानित।
सम्पर्क : 1/109, विराज खंड, गोमतीनगर, लखनऊ।

अनुदान सिंह चौहान मेरे चाचा थे। कौन नहीं जानता उन्हें? आपने भी नाम जरूर सुना होगा। साहित्य के क्षेत्र में एक बड़ा नाम, एक विराट शख्सियत। आलोचना के स्तंभ, साहित्य के पारखी। कलम के सिद्ध। जिस पर कलम चला दी, वह चमक गया। जिसे चाहा कवि बना दिया, जिसे चाहा कहानीकार, उपन्यासकार, निबंधकार। जिन धुरंधरों ने उन्हें चुनौती दी, उन्हें लीप-पोतकर लाइब्रेरी के गंदे कोने में ढकेल दिया। उनकी कलम ने जिसे एक बार अँधेरे में धकिया दिया, वह फिर कभी उजाले में नहीं आ सका। उसकी कलम से कभी फूल झरते थे तो कभी खून टपकता था। वे साहित्य के ऐसे शूरवीर थे, जो कलम को दुधारी की तरह इस्तेमाल करने में अत्यंत प्रवीण थे। उन्होंने बहुत लिखा। मेरे घर की कई अलमारियाँ उनकी किताबों से भरी पड़ी हैं। मैं उन्हें बहुत सँजोकर अभी तक रखे हुए हूँ। रोज जाले हटाता हूँ, दीमक मारने वाली दवा छिड़कता हूँ और धूप-दीप करता हूँ । चाचा की प्रतिभा का कायल ही नहीं, पुजारी भी हूँ।

दरअसल, चाचा के बहाने मैं अपनी कहानी बताना चाहता हूँ। वैसे कहता तो आप सुनते नहीं, पर चाचा की कृपा से आप मेरे बारे में भी थोड़ा-बहुत जानना पसंद करेंगे। आखिर मेरी नसों में भी उसी वंश का खून दौड़ रहा है। चाचा मेरे आदर्श रहे। उनकी प्रेरणा से ही मैंने तो लिखना-पढ़ना शुरू किया। जब तक वे जिंदा रहे, मुझे इस रास्ते पर न जाने की ताकीद करते रहे। मैंने जब भी उन्हें अपनी कोई रचना दिखाई, वे उसे पढ़ने के बाद यही सलाह देते, “बेटे ये आग का दरिया है और डूब के जाना है। कर नहीं पाओगे। लेखक बनना इतना आसान नहीं, कोई और रास्ता पकड़ो।” उनकी हर सलाह मेरे अंदर एक चुनौती का भाव पैदा करती। मैं और मेहनत करता, खूब लिखता। सुबह ही नहा-धोकर पूजा आदि करके बैठ जाता। कई बार तो बिना खाए-पिए 48-48 घंटे लिखता ही रहता। तब मेरी पीढ़ी के बच्चों को ‘लिम्का’ और ‘गिनीज’ का पता नहीं था, अन्यथा लेखन के प्रारंभिक दौर में ही मेरा नाम किसी-न-किसी रिकार्ड बुक में जरूर दर्ज हो गया होता। आप सच मानें, अगर चाचा मुझे हतोत्साहित न करते तो मैं इस दिशा में आगे न बढ़ता। उनके मना करने से ही मेरा उत्साह बढ़ा। इस नाते मैं अपने लेखक बनने के पीछे उन्हें ही प्रेरणास्रोत मानता हूँ। मैं उनका प्रभाव चमत्कृत होकर देखता था। बड़े-बड़े सूरमा चाचा के चरण पखारते थे। उनके आगे-पीछे नवलेखकों की मंडली चलती रहती थी। टी.वी., रेडियो वाले उनका थोड़ा-सा वक्त

पाने के लिए चिरौरी-विनती करते रहते। वे जहाँ होते, वहीं गोष्ठी जम जाती, बहस-मुबाहिसा छिड़ जाता। बचपन से ही मुझे लगने लगा था कि साहित्यकार बड़ी तोप चीज होता है, समाज में, शासन में, सरकार में उसकी बड़ी पूछ होती है। चाचा को हर साल इतनी शालें मिल जाती हैं कि पूरा परिवार जाड़ा काट लेता था। सम्मान, प्रशस्ति-पत्र और अभिनन्दन-वंदन के तो कहने ही क्या! मैंने तभी तय कर लिया था कि महानता इसी मार्ग में है। बड़ा होकर लेखक बनना है, साहित्य सृजन के क्षेत्र में योगदान करना है। एक बार निश्चय कर लिया था तो चल पड़ा साहित्य-सेवा के मार्ग पर। कालेज की पढ़ाई में कभी अच्छे नम्बर नहीं आते थे, फिर भी गिरते-पड़ते एम.ए. कर ही लिया। पीएच. डी. अपने आप झोली में आ गिरी। चाचा की किताबों से उलट-पलटकर कुछ चैप्टर बनाए और थीसिस जमा कर दी। विषय था- 'आलोचना में अनुदान सिंह का अवदान।' चाचा के नाते मुझे भी अयाचित सम्मान मिलता रहता। थीसिस उन्हीं पर थी, उन्हीं से थी, उन्हीं के लिए थी तो क्यों न मिलता मान? लोगों ने मेरे काम की बहुत प्रशंसा की। कुछ ने इसलिए कि उन्हें मेरा काम बहुत मौलिक लगा, शायद उन्होंने चाचा का साहित्य पढ़ा नहीं था और कुछ ने इसलिए कि मैं उम्र में ही नहीं, साहित्य में भी कुल परम्परा का समुचित निर्वाह करने लायक बड़ा हो गया था।

चाचा के अवसान के बाद एक बड़ा शून्य पैदा हो गया। सभाओं में तमाम लोगों ने कहा कि यह शून्य भरा नहीं जा सकता, पर मैंने ठान लिया था, कुछ महत्त्वपूर्ण करूँगा, कुछ ऐसा कि उनकी कमी लोगों को न खले। मेरी कलम द्रुत गति से चल पड़ी। केवल वही मुझे लेखन के क्षेत्र में जाते नहीं देखना चाहते थे, पर मैं था जन्म से दृढ़ निश्चयव्रती। प्रारंभ में मैं लिखने का कोई मौका हाथ से जाने नहीं देता था। किसी नेता का अभिनन्दन होता या साहित्यकार का 'अभिनन्दन-पत्र' लिखने को सतत तैयार रहता। किसी अफसर की विदाई पर 'विदाई गीत,' कार्यक्रमों के शुभारम्भ के लिए 'सरस्वती वंदना,' विजेता टीमों के स्वागत में 'प्रशस्ति-गान' लिखने में तो मेरी मास्टरी हो गई। ऐसे अवसरों पर लोग मुझे जरूर याद करते। फिर मैं अमर शहीदों, महान नेताओं, धर्मगुरुओं की जयंतियों और बरसी के मौकों पर भी लेख लिखने लगा। इसमें लाभ यह होता कि एक बार की मेहनत वर्षों काम आती और एक-एक लेख कई-कई बार पारिश्रमिक दे जाते। इस मामले में मैं कुछ ही वर्षों में विशेषज्ञ हो गया। मेरी प्रतिभा की सुगंध फैलने लगी। अक्सर जब कोई जयंती या बरसी आती, अखबारों के दफ्तर से मेरे पास फोन आते और मैं अपनी वर्षों पुरानी पांडुलिपि को नए सिरे से टाइप कराता और दे आता।

धीरे-धीरे प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। समाजसेवियों, राजनेताओं और संपादकों तक मेरी ख्याति पहुँच गयी। कुछ स्वनामधन्य लोगों की इस अभिलाषा का भी मुझे लाभ मिला कि जीते-जी अमरत्व प्राप्त करना कैसे संभव हो सकता है। मैंने इस मामले में शहर के नाम एक मौलिक सुझाव दर्ज कराया, जिसका संपूर्ण श्रेय मुझे ही मिलना चाहिए। साहित्य में इस तरह 'अभिनंदन-ग्रंथों' की परम्परा शुरू हुई और मैं उनका स्थायी संपादक बन गया। किसी भी वैभव संपन्न महानुभाव के मन में लोक में अमर होने की इच्छा जागती नहीं कि मुझे याद किया जाता। दो महीने के भीतर अभिनंदन-ग्रंथ तैयार। मैं इसके ठेके ले लेता। जिसका जितना बजट होता, उसी के अनुरूप उसके अभिनंदन-ग्रंथ की मोटाई होती। इस विधा का श्रीगणेश मैंने ही किया,

इतनी ख्याति के बाद अब अपने करियर पर पुनर्विचार की कोई गुंजाइश नहीं रह गई थी। मैंने अब तक हर विषय पर और हर विधा में लिखने का पूर्ण अभ्यास कर लिया था। कहानी, कविता, यात्रावृत्त, संस्मरण, हाइकू सब कुछ। हर छंद पर, हर शैली पर मेरी पकड़ बन गई थी। जयशंकर प्रसाद की शैली हो या निराला की या अज्ञेय की, छायावाद हो या प्रगतिवाद या प्रयोगवाद, नज्म हो या रूबाई या ग़ज़ल, मेरी कलम सर्वसिद्ध हो गई थी।

यह सर्वविदित है। धीरे-धीरे मेरी ख्याति बढ़ी तो लोग बैनर, पोस्टर, पेंफलेट तैयार करने में भी मेरी मदद लेने लगे। इस तरह का प्रचुर साहित्य मैंने लिखा और गली-गली, चौराहे-चौराहे छा गया। इन रचनाओं में किसी कोने में मेरा नाम रहता। मैंने तय किया था कि यही मेरा पारिश्रमिक होगा, सो लोगों की भीड़ लगी रहती। इस गलीछाप साहित्य ने मुझ जैसे दलित लेखक को बहुत सम्मान दिलाया। शहर के हर दिल में मैं धड़कने लगा।

इतनी ख्याति के बाद अब अपने करियर पर पुनर्विचार की कोई गुंजाइश नहीं रह गई थी। मैंने अब तक हर विषय पर और हर विधा में लिखने का पूर्ण अभ्यास कर लिया था। कहानी, कविता, यात्रावृत्त, संस्मरण, हाइकू सब कुछ। हर छंद पर, हर शैली पर मेरी पकड़ बन गई थी। जयशंकर प्रसाद की शैली हो या निराला की या अज्ञेय की, छायावाद हो या प्रगतिवाद या प्रयोगवाद, नज्म हो या रुबाई या ग़ज़ल, मेरी कलम सर्वसिद्ध हो गई थी। पर्यावरण हो, जलवायु परिवर्तन हो या आयुर्वेद का महत्त्व, विज्ञान हो या अध्यात्म, आडवाणी हों या मुलायम, मंदिर हो या मस्जिद, मैं अल्पसूचना पर हर विषय पर कलम चला लेता था। मेरी सैकड़ों रचनाएँ हालांकि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं और समाचार पत्रों से खेद-सहित हर महीने वापस आ जाती थीं, लेकिन भूले-भटके, संपादकों की अस्थिर चित्तता के कारण या जरूरत के मुताबिक कोई स्तरीय सामग्री उपलब्ध न होने के कारण तमाम जगह प्रकाशित भी होती रहती थी।

धीरे-धीरे मैं अपने शहर के प्रबुद्ध लेखकों की बिरादरी में शामिल हो गया। इग्नीशन का काम पूरा हो चुका था, लांच होना बाकी था। जरूरत थी कुछ संगठित ढंग से काम करने की ताकि मैं अपनी यशकीर्ति शहर की सीमाओं से बाहर भी फैला सकूँ। सो मैंने कुछ सुविचारित परियोजनाओं को हाथ में लिया। पहले मैंने जीवनी-साहित्य में श्रीवृद्धि का फैसला किया। राजेन्द्र प्रसाद, सुभाषचंद बोस, विवेकानन्द, जवाहरलाल नेहरू इत्यादि। दर्जनभर जीवनी ग्रंथ लिख डाले। फिर वैज्ञानिकों पर हाथ मारा। 'सी.वी. रमन को जानो,' 'होमी की भारत को देन', 'जगदीश बोस की खोज,' 'कलाम की प्रेरणा' प्रभृति पुस्तकें रच डालीं। अब बारी थी कृषि क्षेत्र की। सो 'पैदावार बढ़ाने के नुस्खे' से लेकर 'गोबर का योगदान', 'खर-पतवार खेत के दुश्मन' तक कई अच्छी किताबें बन पड़ीं। उपयोगी साहित्य होने के नाते मैंने सरकार के बाबूतंत्र का फायदा उठाकर कुछ पुस्तकें पाठ्यक्रमों में डलवाने में भी सफलता प्राप्त कर ली। स्थायी आमदनी का जरिया बन गया। साठ तक आते-आते मैं स्थापित हो गया। मैंने कुछ पैसा खर्च किया और अपनी षष्टिपूर्ति धूमधाम से मनवाई। अब समय आ गया सम्मानों और पुरस्कारों की ऊँचाई छूने का। मुझे साहित्य अकादमियों और सरकारी पुरस्कारों की अंतर्कथा समझने में ज्यादा समय नहीं लगा। मैंने देखा था किस तरह गणेशशंकर को श्रेष्ठ पत्रकारिता के लिए सम्मानित किया गया था, जबकि वह समाचार छापने के भी पैसे वसूलता था। मुझे मालूम था कि दिनेश दिनकर को कवि दर्पण का सम्मान कैसे मिला था, जबकि कई मंचों पर वह दूसरे कवियों की रचनाएँ सुनाकर लिफाफे झटक लेता था। सम्मान सस्ते थे, इसलिए आधी या कभी-कभी पूरी रकम देकर भी सम्मान प्राप्त करने में मुझे किंचित संकोच नहीं हुआ। आज मेरे नाम 'साहित्य, मार्तंड', 'विवेक चूड़ामणि', 'रचना-रत्न,' 'सृजन-गौरव' जैसे अनगिनत पुरस्कार और सम्मान है। मैं गर्व से कह सकता हूँ कि मैंने साहित्य-सेवा के लिए अपना सारा जीवन होम कर दिया।

अंत में कुछ ही दिन में एक और चमत्कार होने वाला है। मैंने 75 बसंत देख लिए हैं। अभी मैं ठीक से चल लेता हूँ, ठीक से बोल लेता हूँ और ठीक से लिख लेता हूँ। खतों-किताबत कर रहा हूँ। शहर के चार संपादकों, आठ डाक्टरों, 12 उद्योगपतियों, दर्जनभर विद्वान शिक्षकों ने राष्ट्रपति के नाम मेरे लिए पत्र लिखे हैं। दो सांसदों और तीन विधायकों ने आश्वस्त किया है कि वे भी मेरे नाम की संस्तुति करेंगे। जिलाधिकारी के सम्मान में मैंने इसलिए एक वृहद गोष्ठी कराई ताकि वे भी अपनी तरफ से समाज और साहित्य में मेरे योगदान का विवरण राष्ट्रपति को भिजवाएँ। राष्ट्रीय पुरस्कारों की अगली सूची में मेरा नाम जरूर होगा और तब लोग मुझे कहेंगे- पद्श्री जगत नारायण 'संतोषी।'

टैग किए बिना चैन नहीं रे

* अरुण अर्णव खरे

जन्म : 24 मई1956 (अजयगढ़, पन्ना, म.प्र.)।
शिक्षा : मैकेनिकल इंजीनियरिंग में स्नातक।
सृजन : दो उपन्यास 'कोचिंग/कोटा', तथा 'पानी का पंचनामा', चार व्यंग्य-संग्रह, चार कहानी संग्रह, दो काव्यकृतियाँ। साहित्य की सभी विधाओं में लेखन। देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं सहित विभिन्न वेब पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।
सम्मान/पुरस्कार : अट्टहास वाग्धारा सम्मान, डॉ सुनील सिंह स्मृति सम्मान सहित साहित्यिक उपलब्धियों के लिए दसाधिक पुरस्कार एवं सम्मान।

सम्पर्क:
डी-1/35 दानिश नगर होशंगाबाद रोड, भोपाल (म.प्र.) -462026
मोबा: 9893007744 ई मेल: arunarnaw@gmail.com

कुछ ही महीने बीते हैं जब सुदूर प्रांत से उनका मित्रता अनुरोध आया था। मैं स्वभाव से जितना धर्मनिरपेक्ष हूँ, उतना ही लिंगनिरपेक्ष भी हूँ। बिना लैंगिक भेदभाव किए मैं समान रूप से सभी के मित्रता अनुरोध पर्याप्त छानबीन के उपरांत स्वीकार कर लेता हूँ। उनका मित्रता अनुरोध स्वीकार करने से पहले मैंने उनकी प्रोफाइल में जा के ठीक-ठाक पड़ताल भी कर ली थी। वह भी साहित्यिक रुचि के व्यक्ति थे, यद्यपि उनकी वॉल पर बहुत ही चलताऊ ढंग की तुकबंदियों की भरमार थी। मैंने कुछ पल सोचा भी था कि उन्हें मित्र बनाया जाए या नहीं। पर मन के किसी अंदरूनी कोने से आवाज आई थी कि हो सकता है वह तुम्हें बड़ा साहित्यकार मानते हों, तुम्हारी रचनाओं के मुरीद हों और तुम्हें मित्र बनाकर धन्य होना चाहते हों। ये मन का भीतरी कोना मुझे अक्सर दुविधा की स्थिति से उबार लेता है और खुश होने की ऐसी-ऐसी स्थितियाँ निर्मित कर देता है कि मैं आत्ममुग्ध होने लगता हूँ। खुद पर गुरूर करने की इच्छा होने लगती है। जिस तरह की तार्किक किरणें इस भीतरी कोने से उत्सर्जित होती हैं, वैसी ही मुझे लगता है या तो आर्कमिडीज के मन में 'यूरेका .. यूरेका' चिल्लाते समय हुई होंगी या फिर पेड़ से सेव को टपकता देख न्यूटन के दिल में फूटी होंगी। ऐसी ही किरणों से उत्सर्जित ज्ञान ने उस अपरिचित लेकिन संभावनाशील प्रशंसक को मेरा मित्र बना दिया था।

शाम होते-होते उस नए बने मित्र ने तीन तुकबंदियाँ अपनी वाल पर पोस्ट की और मुझे टैग कर दिया। सौजन्यतावश मैंने उनकी सभी पोस्ट पर सुंदरम् लिखकर एक 'थम्स अप' इमोजी को भी चिपका कर भेज दिया। उन्होंने विनय पूर्वक आभार व्यक्त किया और अगले दिन तीन और तुकबंदियों में मुझे नत्थी कर दिया। सौजन्यता के साथ-साथ विनयशीलता भी मुझमें कूट-कूट कर भरी हुई है, अतएव इस बार भी मैंने 'वाह, क्या बात है' लिखकर अँगूठे के साथ जवाब दे दिया। एक हफ्ते तक यह सिलसिला उनकी ओर से बदस्तूर जारी रहने के बाद उनके दूसरे मित्रों ने भी मुझे टैग करना शुरु कर दिया। उनके मित्र तो और भी उस्ताद थे। वे मुझे मुंडन से लेकर शवयात्रा तक की कहानियों और तस्वीरों में टैग करने लगे। कुछ दिन बाद उनके मित्रों के मित्र भी मुझे टैग करने लगे। अब मेरी वाल पर मेरी पोस्ट, ढूँढ़ने पर भी दिखाई नहीं देती और

टैग की गई पोस्टों में मैं अपना अस्तित्व ढूँढ़ता रहता । इसी तरह कुछ दिन और बीत गए कि एक दिन अचानक एक वरिष्ठ साहित्यकार का मैसेज आ गया– "तुम्हारा साहित्यिक स्तर तो बहुत निम्न स्तर का है, मुझे बहुत देर से समझ में आया । तुम कैसी–कैसी कविताओं को पसंद करते हो, देख कर मुझे शर्म आती है । देर से ही सही, तुम्हारे स्तर की सारी कलई खुल गई है । मेरी मित्रता सूची में तुम्हारा नाम रहने से मेरी प्रतिष्ठा पर आँच आ रही है, वर्षो की तपस्या के बाद बनी मेरी इमेज तुम्हारे कारण धूल–धूसरित होने लगी है ।" अपने मैसेज में मेरी धज्जियाँ उड़ाने के बाद उन्होंने मुझे अपनी मित्रता सूची से भी विदा करने में ज्यादा देर नहीं की । उनकी देखा–देखी अगले ही दिन दो और वरिष्ठों ने अपनी मित्रता–सूची से मेरा नाम उड़ा दिया ।

वरिष्ठों का इस तरह जाना मुझे खतरे की घंटी लगा । ये सभी वरिष्ठ किसी न किसी साहित्यिक संस्था की पुरस्कार समितियों में थे या फिर से उनके आने की संभावना थी । उनकी नाराजगी यानी कि छोटे–मोटे पुरस्कार–सम्मान तक से बेदखल हो जाना था । अब व्यक्ति साहित्यकार हो और उसके परिचय में लिखने के लिए एक अदद सम्मान का नाम भी न हो, तो मित्रों को छोड़िए, परिवार–जन भी लानत–मलामत करने लगते हैं । जबसे वरिष्ठों ने मेरा त्याग किया था, यह विचार बार–बार मन को व्यथित कर रहा था ।

मेरी सौजन्यता और विनयशीलता के बारे में आप जान ही चुके हैं, पर संकोच के साथ बताना चाहता हूँ कि मैं सज्जन भी उसी दर्जे का हूँ । इसके लिए इतना प्रमाण ही काफी है कि मैंने आजतक अपने स्मार्टफोन में न तो कोई पासवर्ड डाला है और न ही किसी पैटर्न लॉक का इस्तेमाल किया है । मेरी पत्नी कभी भी मेरे फोन को उठाकर उसका निरीक्षण / परीक्षण, जो भी करना उसे आता है, कर डालती है। उन अपरिचित सज्जन को मित्र बना कर अब मेरी सज्जनता मुझे ही मुँह चिढ़ाने लगी थी । सज्जनता को एकदम उतार फेंकना भी मुझे अच्छा नहीं लग रहा था, इसलिए बीच का रास्ता निकाल कर मैंने सज्जनता के थोड़े पर कतरना उचित समझा । मैंने अब उस अपरिचित नहीं रहे मित्र की पोस्ट पर 'रिमूव टैग' का इस्तेमाल कर उसके टैगियापन को कुतरना शुरु कर दिया । इसका भी उस पर कोई असर नहीं हुआ, मानो मुझे टैग किए बिना उसे चैन ही नहीं मिलता था । मुझे लगने लगा कि वह मेरी कुंडली में उच्च के शुक्र को अपदस्थ कर आ विराजा है । यदि वह मुझे इसी तरह टैग करता रहा तो मेरी साहित्यिक कुंडली में शनि की अनंतकालीन महादशा लगने का योग बनते देर नहीं लगेगी । अत: मैंने अपनी सज्जनता के थोड़े पर और कतरे तथा सेटिंग में जाकर, बिना मेरी सहमति के मुझे टैग करने का ऑप्शन एक्टिव कर दिया । संभवतया उसको यह मेरी बदतमीजी लगी होगी, वह बहुत मर्माहत हुआ होगा, तभी अगले ही दिन उसने मुझे अपनी फ्रेंड लिस्ट से बेमुरब्बत तरीके से बेदखल कर दिया था ।

❋❋

मेरी सौजन्यता और विनयशीलता के बारे में आप जान ही चुके हैं, पर संकोच के साथ बताना चाहता हूँ कि मैं सज्जन भी उसी दर्जे का हूँ । इसके लिए इतना प्रमाण ही काफी है कि मैंने आजतक अपने स्मार्टफोन में न तो कोई पासवर्ड डाला है और न ही किसी पैटर्न लॉक का इस्तेमाल किया है । मेरी पत्नी कभी भी मेरे फोन को उठाकर उसका निरीक्षण / परीक्षण, जो भी करना उसे आता है, कर डालती है। उन अपरिचित सज्जन को मित्रा बना कर अब मेरी सज्जनता मुझे ही मुँह चिढ़ाने लगी थी ।

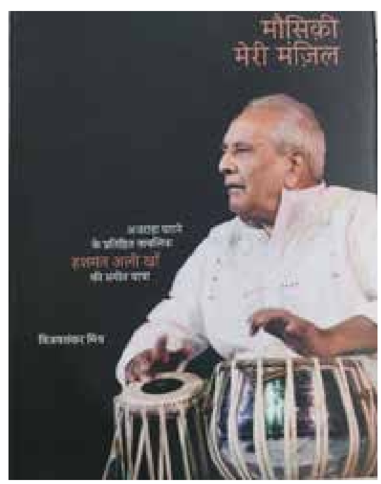

आत्म–मुग्धता का सुख

*** रन्दी सत्यनारायण राव**

जन्म : 28 मई 1955
(जमशेदपुर, झारखण्ड)
सृजन : कविता, बालोपयोगी कहानियां, व्यंग्य लेख तथा अन्यान्य. अब तक अनेक विधाओं में पुस्तकें प्रकाशित।
व्यंग्य : चरण स्पर्ष का पावन सुख, कुत्तों की खोज में भीड़ तंत्र, हास्य हाय ये दिल, कविता संग्रह - अक्षर बोलते हैं ।
सम्पर्क :
बी - 32 - बी इन्दिरा रोड, बागुन नगर, बैरीडीह कॉलोनी, जमशेदपुर - 831017
मो - 9234879973
e mail : rsatyanarayan794@gmail.com

अभी अभी एक विद्वान लेख़क का लिखा लेख पढ़ा, विस्मय हुआ कि इतने महान विभूति के साहित्य का रसपान करने से आज तक मैं छूट कैसे गया...? ऐसा नहीं कि लेख़क मेरे जैसा कोई ऐरा - गैरा था, बल्कि संवेदनशील पाठक के लिए किसी आयातित खुशबू से नथुनों को सिहरा देने तथा मृगतृष्णा से भ्रमित कर देने वाले को पहली बार पढ़ रोम - रोम पुलकित होने को था, भ्रमित इसलिए नहीं कि अपने देश के स्वनामधन्य लेख़क, कवियों तथा न जाने कितनी विधाओं के शूरमा होने के मुगालते में निसंकोच सब की जोगराफिया के साथ अपना भी नाम, मान न मान मैं तेरा मेहमान की भाँति जोड़ लेते हैं। अब इस देश में कोई सडक छाप लिक्खाड़ अपने को प्रेमचंद अथवा पत्रकारिता में खुशवंत सिंह समझ ले तो किसी का मेदा ख़राब क्यों हो...? पढने वाला भले ही लज्जा से मर - मर जाए उनकी बला से ...! हुज़ूर आप कौन होते हैं यह देखने वाले कि छप क्या रहा है ...? अर्थशास्त्र का नियम है - माँग कम और उत्पादन अधिक हो तो वस्तु की कीमत में लुढ़काव तय है। यही दशा आज लेखक, पत्रकार और पत्र - पत्रिकाओं का है। बेचारे ऐसे लोगों के आगे जीवन - मरण का प्रश्न मुंह बाएँ खड़ा है कि अपनी प्रतिष्ठा कैसे स्थापित की जाय या बचायी जाये...? जिससे छपते रहे, दूसरों को भी छापते रहे और पेट को भी उचित दाना - पानी मिलता रहे । मुआ गूगल महाराज ने आकर सारा खेल ही बिगाड़ कर रख दिया। तिस पर मोबाइल और इंटरनेट की सर्वसुलभता ने प्रिंट मीडिया वालों का जीना हराम कर दिया। पाठक ही नहीं मिल रहे तो विज्ञापन देने वाले कैसे मिलेंगें, बड़ी विकट स्थिति है। ऐसे में घर चलने - चलाने की चिंता तो वाजिब ही है न ...! चौथे खम्भे का यह हिस्सा जर्जर और दलित ही सही, किन्तु अल्पसंख्यकों की भाँति अपनी दुकान चलाकर बेरोजगारी दूर कर रहा था, अब वह भी हाथ से निकलता प्रतीत हो रहा है। करेले पे नीम चढ़े की भाँति एक बार मेरे इस निवेदन पर कि - "प्रकाशक कम सम्पादक जी, मेरी प्रकाशित रचना का मानदेय अब तक आपने प्रेषित नहीं किया है...!" के जवाब में मुझे काट खाने के अंदाज से जवाब मिला - "ग़जब करते हो 'रंडी' साहब आप भी.., एक तो रचना प्रकाशित कर आपको उपकृत किया और मुफ़्त में आपको अंतरराष्ट्रीय स्तर का घोषित किया, आप हैं कि पड़ोसी

देश की तरह 'कटोरा' लिए खड़े हो गए। हुज़ूर, एक तो हम विज्ञापनों के आसरे कोई अंक प्रकाशित कर रहे होते हैं, और वे पर्याप्त मिले तो ही कोई अंक निकालते हैं और आप हैं कि... भाई जी कुछ हमारी प्रतिष्ठा और उदर की भी सोचें, देश को सुचारु रूप से चलाने में हमारी कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, जो किसी भी फायर ब्राडेड नेता से कम नहीं!" मैं क्या कहता, अलबत्ते मुझे भी उन्होंने पाकिस्तानियों जैसा समझ, रातोंरात अंतरराष्ट्रीय लेखक से गली का लेखक घोषित कर दिया । सोशल मीडिया को गरियाते हुए मैंने सरकार द्वारा चलाये जा रहे एक प्रकाशन के संपादक से इसी बाबत बात करने की सोची, उनकी पत्रिका में भी मेरी रचना प्रकाशित हुई थीं- "हैलो करमा जी, आपने मेरी रचना का पारिश्रामिक मेरे बैंक अकाउंट में भिजवाया नहीं। कारण अज्ञात है। हुज़ूर जल्दी भिजवाएँ, चार माह से मेरे पेट में चूहे दौड़ रहे हैं!" बहुधा सरकारी अफसर मोदी जी के शासन में भी जवाब देना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते रहे हैं, लेकिन अहोभाग्य कि संपादक जी ने ही जवाब सरकाया- "रंधी राव जी, नमस्कार आप बार-बार ई-मेल या फोन से इस बाबत तकाजा करते रहे हैं। हमने पहले ही आपको सूचित कर दिया कि राशि प्रेषित करने में कुछ तकनीकी अड़चनें हैं। आपने अपनी कहानी के अंत में अपना मूल नाम, तो बैंक खाते में संक्षिप्त नाम अंकित किया हुआ है। इसलिए हम कुछ न कर पाने का खेद व्यक्त करते हैं और यह भी कि आपके पेट के चूहों को नियंत्रित नहीं कर पाने का हमें भी अफ़सोस है!" यहाँ मैं फ़िर निरुत्तर रह गया। मैं निराश हो चला जा रहा था कि रास्ते में मेरे मित्र खिलंदड जी मिल गए। मेरी समस्या सुन कर बोले- "तुम क्यों लिखते हो और किसके लिए लिखते हो?"

मैंने उत्तर दिया- "पहले तो अपने लिए, फिर दूसरों में जागृति लाने के लिए, उसके बाद उसे दुनिया को दिखाने के लिए, जिससे मेरा नाम और प्रतिष्ठा बढे!" उसने फिर पूछा- "किसके कहने पर यह सब करते हो?"

मैंने निर्विकार हो जवाब दिया- "स्वांतः सुखाय!" वह ठहाका लगाकर बोला- "अरे यार, सामने वाला भी तो वही कर रहा है, जो तुम कर रहे थे. न तुम्हें किसी ने कहा कि लिखो और प्रकाशकों को भेजो, न ही तुमने किसी को कहा कि प्रकाशक बन मुझे प्रकाशित करो। दोनों को ही अपने काम में सुख मिलता है, दोनों आत्ममुग्ध और आत्मरति से आनन्दित हैं. ऐसे में शिकायत किस बात की?" उसकी बात सुन समझ में आ गया कि कोई किसी का बलात्कार करे तो क़ानून का कोड़ा है, लेकिन किसी की आत्ममुग्धता में लीन होने पर कोई बंदिश है क्या ...?

आ, अब लौट चलें

*** दलजीत कौर**

शिक्षा : पी-एच. डी.(हिंदी)
पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़

प्रकाशित पुस्तकें
विभिन्न विधाओं में एक दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।
विभिन्न संस्थाओं द्वारा अनेक सम्मान/पुरस्कार प्राप्त।

संप्रति : स्वतंत्र लेखन

संपर्क
2571/40 सी
चंडीगढ-160036
मो. 9463743144

drdaljitkaursaini@gmail.com

एक मित्र कुंभ से पाप धोकर लौटे । मेरा उनसे मिलने जाना लाज़मी था । वे पहले से ज़्यादा सुंदर व स्वच्छ नज़र आ रहे थे । आत्मा का पता नहीं । वे कुंभ की महानता का बखान कर रहे थे । मैंने कहा-पिछले कुछ समय से देश कुछ ज़्यादा ही धार्मिक हो गया है। उन्होंने कहा-जी बिलकुल ! एक सौ चौवालीस वर्ष बाद ऐसा महान कुंभ आया है । जिसने इस समय गंगा में स्नान नहीं किया, उसका पृथ्वी पर जन्म व्यर्थ है। मुझे अपनी व्यर्थता का आभास हुआ । मैंने मन ही मन खुद को धिक्कारा ।

मेरी कई जिज्ञासाएँ थीं। ख़बरों में बहुत कुछ सुना था। मैंने पूछा-आप तो वहाँ जाकर आए हैं। सुना है वहाँ ग्यारह -बारह बच्चों का जन्म हुआ ? क्या लोगों ने यह योजनाबद्ध तरीके से किया? क्या वे मुफ़्त की चिकित्सा का फ़ायदा लेना चाहते थे ? क्या इसका भी संबंध धर्म से है ? अज्ञानता उनके चेहरे पर साफ़ झलक रही थी । फिर भी उन्होंने ज्ञान दिया-उन बच्चों के पाप तो पैदा होते ही समाप्त हो गए । उनके जीवन में अब कोई कष्ट नहीं होगा । धर्म की दृष्टि से देखो ।

मैंने खुद से ही प्रश्न किया-भीष्म पितामह तो गंगा के ही पुत्र थे । फिर उनके जीवन में इतने कष्ट क्यों आए ?

मैंने दूसरा प्रश्न किया-इतनी भीड़ का कुंभ में पहुँचना क्या सही है ? कितनी असुविधा ? भगदड़ ? मौत ?शव ?

रास्ता जाम ?

उन्होंने मुझे टोका-वह भीड़ नहीं। आस्था में डूबे भक्त हैं। असुविधा कैसी? ईश्वर इतनी सरलता से नहीं मिलते । कुछ कष्ट तो होगा । भगदड़ ईश्वर ने नहीं, शरारती तत्वों ने मचाई । वह मुक्ति है । उसे मौत कहकर उसका निरादर मत करो । बाबू मोशाए ।

मैंने ज़ुबान खोली-लाशें नहीं मिली ।

उन्होंने स्पष्टीकरण दिया-लाशें गंगा मैया की गोद में समा गई । लोगों को जन्म-मरण से मुक्ति मिल गई । और जो तुम सड़क जाम का राग अलाप रहे हो, वह रिकॉर्ड बनाने के लिए किया गया । तुमने ठीक वक़्त पर समाचार नहीं देखे ?

दुनिया के सबसे लंबे ट्रैफिक जाम का रिकॉर्ड भारत ने बनाया । प्रयागराज में चल रहे महाकुंभ 2025 के दौरान यह जाम लगा है, जिसकी कुल लंबाई लगभग तीन सौ किलोमीटर बताई जाती है ।

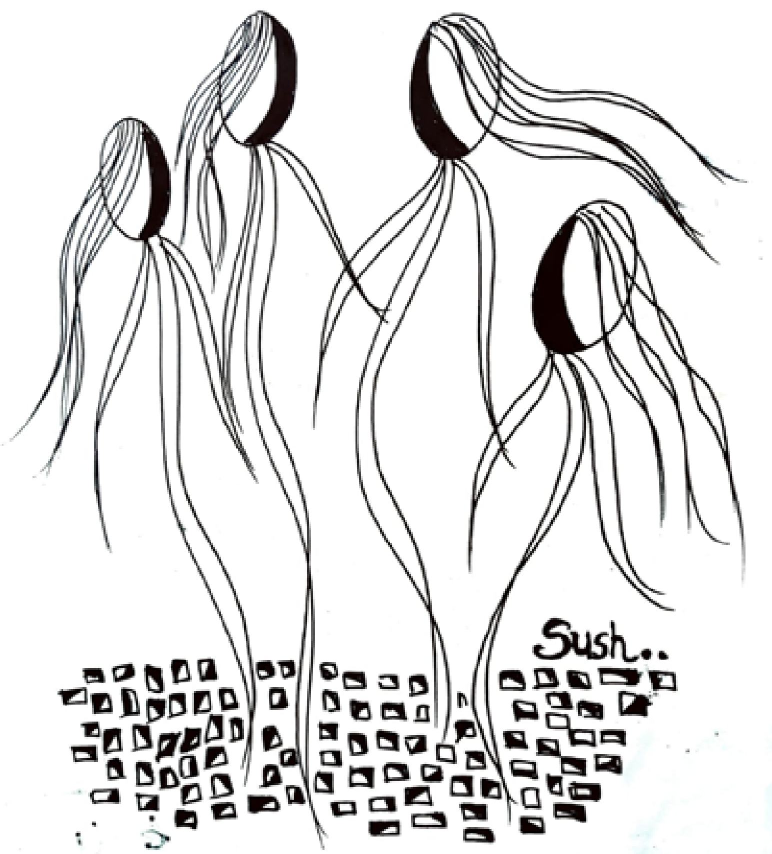

कटनी से प्रयागराज तक लगा दुनिया का सबसे लम्बा जाम । इतिहास का सबसे भीषण जाम, 300 किलोमीटर तक गाड़ियों का सैलाब!

मैंने हिम्मत कर कहा - एक इंस्पेक्टर भगदड़ में मारे गए।

उन्होंने हैरत से मेरी ओर देखकर प्रश्न किया -मारे गए ?

तुम खबरें ध्यान से नहीं सुनते ?

"उत्तर प्रदेश पुलिस के सब इंस्पेक्टर ने महाकुंभ में भगदड़ के दौरान श्रद्धालुओं को बचाते हुए अपने प्राणों की आहुति दे दी ।" उसे शहीद कहो । उन्होंने हिदायत दी ।

देश के सबसे अमीर आदमी ने अपनी चार पीढ़ियों के साथ गंगा में स्नान किया। उन्हें सबसे बड़े आचार्य, महाराज, महामण्डलेश्वर ने गंगा माँ की पूजा-अर्चना करवाई । वे क्या मूर्ख हैं ?

बड़े-बड़े स्टार, सुपर स्टार वहाँ पहुँच रहे हैं और डुबकी लगा रहे हैं । अब तक 45 करोड़ लोगों ने गंगा में डुबकी लगाई । सात हज़ार से ज्यादा महिलाओं ने कुंभ में संन्यास लिया है ।

उनके चेहरे पर आध्यात्मिक तेज था । उनकी निगाहें कह रही थीं-बस ! तुम ही अभागे हो, जो इससे वंचित रह गए ।

उन्होंने प्रत्यक्ष रूप में कहा-लोग रेल के शौचालय में बैठ कर कुंभ पहुँचे हैं, उन्होंने कितनी धक्का-मुक्की की, दरवाज़े तोड़ डाले, पर धर्म पर आँच नहीं आने दी ।

एक श्रद्धालु ने महाराष्ट्र के नागपुर के घर में लाखों की चोरी की और उस पैसे से कुंभ पहुँचा । उसकी भावना को समझो । उसे चोर मत कहो । चार दोस्त जाम की वजह से ढाई सौ किलोमीटर का सफ़र नाव से तय कर कुंभ पहुँचे । पूरे बनारस में इतने श्रद्धालु हैं कि प्रशासन ने स्कूलों की छुट्टियाँ बढ़ा दी हैं । धर्म से बढ़कर शिक्षा नहीं है रे ।

कुंभ में हर रोज़ नए-नए चमत्कार हो रहे हैं । किसी को बिछड़ा पति मिला है तो किसी को माँ । एक माला बेचने वाली को गंगा में डुबकी लगाते ही फ़िल्मों में काम मिल गया । एक आईआईटियन रातों-रात मशहूर हो गया । एक ए बी सी वाला कछुआ मिला । सब गंगा मैया की कृपा से।

मेरी तरफ़ नफ़रत भरी नज़र से देखकर बोले-तुम ख़ुद नहीं जा पाए, इसलिए ऐसे प्रश्न कर रहे हो ।

उन्होंने उठकर टी. वी. चलाया । उसमें खबर आ रही थी-आपके परिवार -मित्र जो भी प्रयागराज गए हैं उनसे संपर्क कर वापस लौटने की अपील करें, वरना एक और भीषण त्रासदी हमें देखने को मिलेगी ।

खबर की हेडिंग में लिखा था-आ अब लौट चलें ।

मेरे मन ने भी कहा-आ अब लौट चलें । मैं चुपचाप उठकर घर की ओर चल पड़ा ।

❋❋

भारतीय भाषा एवं साहित्य : सामर्थ्य एवं प्रतिभाएँ

हिंदी भाषा एवं साहित्य के सेवियों की शोधपरक जीवनी, संदर्भ-ग्रंथ लेखन, अज्ञात या अल्पज्ञात हिंदी-भोजपुरी रचनाकारों तथा उनकी रचनाओं का मूल्यांकन करने में वरिष्ठ लेखक जगदीश प्रसाद बरनवाल 'कुंद' जी का समतुल्य दुर्लभ है। सामान्यतः साहित्य सृजन में सक्षम लेखक जीवनी तथा शोध-संदर्भ ग्रंथों के लेखन में कम रुचि दिखाते हैं। दिखाते भी हैं तो ऐसे विशाल कद के रचनाकार को जीवनी लेखन के लिए चुनते हैं, जिससे उनको भी ख्याति मिले। नींव की ईंट की तलाश करने वाले और उनका यशोगान करने वाले शब्दशिल्पी कम ही मिलते हैं। यह हिंदी साहित्य तथा आज़मगढ़ जनपद का सौभाग्य है कि यहाँ 'कुंद' जी जैसे परसुख-संतोषी रचनाकार हैं, जो अपनी शोध-प्रवृत्ति से हिंदी साहित्य को समृद्ध करते जा रहे हैं।

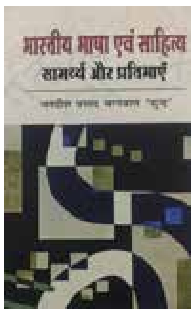

पुस्तक : 'भारतीय भाषा एवं साहित्य : सामर्थ्य और प्रतिभाएँ' (जीवनी एवं लेख संग्रह)
लेखक : जगदीश प्रसाद बरनवाल 'कुंद'
प्रकाशक : संकल्प प्रकाशन
ए-201, गली नं. 4 बी, पार्ट- 2 पहला पुस्ता, सोनिया विहार, दिल्ली-110090
पृष्ठ : 288
मूल्य : रु 350/ (पेपर बैक)

'विदेशी विद्वानों का हिंदी प्रेम' तथा 'विदेशी विद्वानों का संस्कृत प्रेम' शोध-संदर्भग्रंथ होते हुए भी शोधपूर्ण बहुआयामी जीवनी की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। इन दोनों पुस्तकों के माध्यम से 'कुंद' जी ने हिंदी-संस्कृत से प्रेम रखने वाले विदेशी विद्वानों के अवदान तथा जीवन पर यथासंभव विस्तृत ब्योरा दिया है। इन दोनों पुस्तकों से गुजरते हुए 'कुंद' जी के अध्यवसाय, श्रम, जिज्ञासा, शोधलिप्सा और समर्पण पर हैरान हुआ जा सकता है। ये पुस्तकें उनके गहन अनुशीलन के सुफल हैं। अपने विपरीत स्वास्थ्य, बड़े प्रोत्साहन तथा बड़ी सुविधाओं के अभाव के बावजूद वे रचनात्मक शोधकार्य में सतत लगे हुए हैं। इसका प्रमाण है अभी हाल में आया उनका एक और जीवनी-निबंध-सह शोधपरक ग्रंथ 'भारतीय भाषा एवं साहित्य : सामर्थ्य और प्रतिभाएँ'। इस पुस्तक का शीर्षक कुछ लंबा है। 'कुंद' जी की कुछ अन्य पुस्तकों के शीर्षक भी लंबे हैं, किंतु इसमें समाहित सामग्री तथा विविधता को देखते हुए शीर्षक समीचीन लगता है। इस पुस्तक में कुल 29 लेख हैं, यानी विविधता से भरे 29 विषय। पुस्तक की भूमिका में 'कुंद' जी लिखते हैं कि इसमें सम्मिलित तमाम लेख अलग-अलग पत्रिकाओं की माँग पर, प्रसंगवश या स्वतंत्रलेखन के रूप में लिखे गए थे तथा इनमें से अधिकतर हिंदी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। निःसंदेह, ये सभी लेख महत्त्वपूर्ण हैं, अतः इनका एक संकलन निकलना इनकी दीर्घजीविता एवं हिंदी साहित्य के लिए आवश्यक था। इसी मंतव्य से इस पुस्तक का प्रकाशन संभव हुआ, जो कम समय एवं एक ही स्थान पर पाठक को बहुत कुछ दे जाता है।

इस पुस्तक में वैसे तो विषयों की विविधता है, किंतु इसका अधिकांश लेखकों की जीवनियों को समर्पित है। जिन प्रमुख लेखकों की जीवनियों तथा उनके रचनाकर्म को इस पुस्तक में स्थान मिला है, वे हैं कर्ण सिंह 'कर्ण', 'हरिऔध', पत्रकार बाबू विष्णुराव पराड़कर, राहुल सांकृत्यायन, गुरुभक्त सिंह 'भक्त', पं. श्यामनारायण पाडेय, पं. अमृतलाल नागर, जगदीश चंद्र माथुर, रवींद्र नाथ टैगोर, अमीर खुसरो, नज़ीर अकबराबादी, मौलाना शिब्ली नोमानी, आगा हश्र आदि। यहाँ तक कि 'कुंद' जी अल्पख्यात लोकगायक बिरही बिसराम पर भी अपनी लेखनी चलाना नहीं भूलते। वे जब भी किसी लेखक की जीवनी पर आते हैं तो उनका विशेष

ध्यान उसके साहित्य पर होता है। वे लेखक के व्यक्तित्व पर तो यथासंभव विस्तार से प्रकाश डालते ही हैं, किंतु उनका विशेष प्रयास होता है कि उसके प्रमुख अवदान को पाठकों के समक्ष रखा जाए। इस समन्वय में पाठक उस लेखक के विषय में आवश्यक जानकारी पा जाता है। किसी लेखक के विपुल रचना संसार में से कुछ अंशों को बानगी के तौर पर छाँटना और प्रस्तुत करना एक कठिन कार्य होता है, जिसमें विवेक के पूर्ण उपयोग की आवश्यकता होती है।

हिंदी के बड़े लेखकों के विषय में तो यत्र-तत्र पढ़ने को मिल भी जाता है, किंतु सदियों पहले पैदा हुए अमीर खुसरो जैसे लोकप्रिय, सर्वमान्य कवि-विद्वान के विषय में अधिकृत जानकारी कम मिल पाती है। इस संग्रह में 'कुंद' जी ने अमीर खुसरो के जीवन एवं कृतित्व पर व्यापक प्रकाश डाला है। नज़ीर अकबराबादी तथा अकबर जैसे शायरों पर भी 'कुंद' जी ने पर्याप्त लिखा है। इस पुस्तक से गुजरने पर आश्चर्य होता है कि लेखक ने अपनी दृष्टि कहाँ-कहाँ दौड़ाई है तथा कहाँ-कहाँ से सामग्री जुटाकर एक जगह कैपसूल के रूप में दे दिया है। कविता, नाटक, उपन्यास, पत्रकारिता, देशाटन, लोकगायन तक की विधाओं में रचनाकारों को तलाशने में 'कुंद' जी ने लंबी यात्रा की है।

जीवनी से इतर जो विषय लिये गए हैं, वे भी बहुत रोचक और ज्ञानवर्धक हैं। 'हिंदी के विकास में रूस का योगदान' जैसे विषय पर अनुशीलन कम लोग ही कर सकते हैं, किंतु 'कुंद' जी ने किया है। 'विदेशी विद्वानों की दृष्टि में कालिदास' जैसा रोचक प्रकरण देखने में कम मिला है। इस लेख को हमने 'समकालीन अभिव्यक्ति' में प्रकाशित किया था और प्रकाशित करते समय ही इसकी गुणवत्ता से प्रभावित हुए थे। इसमें लेखक ने कालिदास के विषय में न केवल विदेशी विद्वानों के विचारों का संकलन किया है, अपितु कालिदास के साहित्य के विभिन्न प्रसंगों पर महत्त्वपूर्ण टिप्पणी दी है। 'समकालीन अभिव्यक्ति' के लिए इस लेख को पढ़ते समय एहसास हुआ था कि इसमें 'कुंद' जी ने मधुमक्खी की तरह न जाने कितने फूलों का रस निकालकर मधु सदृश लेख तैयार किया है।

सांप्रदायिकता के अटपटे समय में 'कुंद' जी ने 'मुस्लिम रचनाकारों की रामानुरक्ति' जैसे लेख के माध्यम से एक बड़ा संदेश देने का प्रयास किया है। साहित्य एवं कला का कोई धर्म नहीं होता। भर्तृहरि का उल्लेख करें तो साहित्य-संगीत और कला से विहीन व्यक्ति तो साक्षात् पशु होता है, उससे वास्तविक धर्म की उम्मीद तो की ही नहीं जा सकती। हमारे यहाँ हिंदी-उर्दू तथा संकीर्णताओं का भेद लेकर चलने की परंपरा नहीं रही है। यदि मनुष्य का अंत:करण साफ हो, भले ही वह किसी धर्म का हो, तभी वह मनुष्य कहलाने की योग्यता रखता है। कहने की आवश्यकता नहीं, 'कुंद' जी ने इस लेख के माध्यम से रहीम, अल बदायूनी, अमीर खुसरो, इकबाल, सागर निज़ामी, अजतुल्लाह खाँ इत्यादि मुस्लिम रचनाकारों की रामभक्ति विषयक कविताओं को उद्धृत करते हुए एक बड़ा संदेश दिया है।

'कुंद' जी को पढ़ते हुए लगता है कि लुप्तप्राय या अल्पज्ञात हिंदी रचनाकारों को पटल पर लाने में उन्हें विशेष आनंद मिलता है। पुस्तक के अंत के कई लेख इस धारणा की पुष्टि करते हैं। 'लुप्त हो गई साप्ताहिक विशेषांकों की परंपरा', 'साहित्यिक उपनामों की आधारभूमि' और अंतत: 'कवि : जो विस्मरण की भेंट चढ़ गए' जैसे लेख तो यही कहते हैं कि 'कुंद' जी ऐसी चुनौतियाँ लेते हैं और अपने शोध से हिंदी जगत को समृद्ध कर जाते हैं। आज़मगढ़ उनकी जन्म तथा कर्मभूमि रही है, इसलिए आज़मगढ़ के प्रति उनका लगाव स्वाभाविक है, अतुल्य है।

जीवनी एवं शोधात्मक लेखों के साथ समस्या उनके बोझिल एवं अरुचिकर हो जाने की होती है, किंतु 'कुंद' जी अपनी भाषा-शैली एवं प्रस्तुतीकरण की विशिष्टता से अपनी रचनाओं को उपरोक्त दोषों से बचा ले जाते हैं। वे विषय को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि पाठक पढ़ता ही चला जाता है। नि:संदेह, पुस्तक के लेखों में बहुत कुछ उपयोगी है, किंतु वह पढ़े जाने की माँग करता है। जीवनी एवं शोधपरक लेखों के अंश समीक्षा के अंतर्गत उद्धृत करना सहज एवं समीचीन नहीं होता। यह कहा जा सकता है कि पुस्तक अपने शीर्षक को सार्थक करती है। यदि एक ही जिल्द में बहुत सारे रचनाकारों के विषय में जानना है तो इस पुस्तक को पढ़ा जाना चाहिए।

समीक्षक
हरिशंकर राढ़ी

समय जल–सा

सार्थक जीवन के 101वें वर्ष में आयु-वार्धक्य से स्वास्थ्यगत समस्याओं के बावजूद साहित्य मनीषी डॉ. रामदरश मिश्र जी अपनी सकारात्मक ऊर्जा और जिजीविषा के चलते कम ही सही, अभी साहित्य-सृजन कर ले रहे हैं। उनके विपुल, विशद एवं बहुविध साहित्य ने हिंदी जगत को बहुत कुछ दिया है, जिससे कृतज्ञ हिंदी साहित्य-समाज उन्हें कई रूपों में आत्मीय सम्मान देता जा रहा है। मिश्र जी के शताब्दी वर्ष में लगभग सभी बड़ी पत्रिकाओं ने जहाँ उन पर विशेषांक निकाले, वहीं अनेक प्रकाशकों एवं साहित्यकारों ने आलोचनात्मक पुस्तकें निकालीं, उनकी कविताओं-कहानियों के संग्रह निकाले। इसी क्रम में सर्वभाषा ट्रस्ट ने प्रख्यात कवि-आलोचक ओम निश्चल जी के संकलन-संपादन के अंतर्गत मिश्र जी की कविताओं का संग्रह 'समय जल-सा' निकाला है, जिसमें उनकी प्रतिनिधि कविताएँ सम्मिलित हैं।

144 पृष्ठों के इस संग्रह में डॉ. रामदरश मिश्र जी की कुल 98 कविताएँ ली गई हैं, जो उनके समस्त कविकर्म की संक्षिप्त यात्रा करवा देती हैं। संपादक ओम निश्चल ने पहली कविता के रूप में देश की स्वतंत्रता के अति महत्त्वपूर्ण वर्ष, सन् 1947 में रचा गीत 'चल रहा हूँ' लिया है और अंतिम कविता के रूप में 'ऊँचाई' सन् 2010 की है। इतने लंबे कालखंड में मिश्र जी ने विविध स्वाद की कविताओं का विपुल संसार रचा है और 2010 के बाद भी उनकी कविता-यात्रा अनवरत चलती रही है। तकनीक के आधार पर रामदरश मिश्र के काव्य में गीत, ग़ज़ल, छंदमुक्त कविता और मुक्तक विधा की रचनाएँ मिलती हैं, किंतु इस संग्रह में केवल गीत और छंदमुक्त कविताओं को लिया है, उसमें भी गीत कम और कविताएँ अधिक हैं। इतने बड़े कालखंड में मिश्र जी की प्रारंभिक कविताओं के कथ्य से तुलना बाद की कविताओं से करें तो बदलाव मिलता है, जो बहुत जरूरी है। यह भी कहना पूरी तरह न्याय-संगत होगा कि उनकी कविताएँ पहले की हों या बाद की, सभी जीवनमूल्यों से बँधी हैं।

यदि कथ्य के आधार पर मिश्र जी की कविताओं की विशिष्टता पर ध्यान दिया जाए तो स्पष्टतः वे जन और मन की कविताएँ हैं। मिश्र जी किसी बड़े चरित्र, बहुत बड़े तात्कालिक मुद्दे, राजनीतिक नारेबाजी या किसी बद्ध विचारधारा को लेकर नहीं चलते। उनके काव्य में छोटी-छोटी संवेदनाएँ, छोटी-छोटी वस्तुएँ, आमजन का भोगा छोटा यथार्थ, उनके साथ संवेदना व विकास के नाम पर सत्ता द्वारा की जाने वाली विसंगतिपूर्ण नौटंकी, राजनीति एवं साहित्य में बैठे मठाधीशों के पाखंड का विमोचन सतत रूप से उपस्थित हैं। दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता उनका पूरी तरह सकारात्मक एवं ऊर्जावादी होना है। वे किसी भी परिस्थिति में निराश होना नहीं जानते और न केवल कुछ जली-कटी सुनाकर चल देने वाले कवि हैं। वे अपनी कविता के साथ सीधे-सरल ढंग से पाठक से जुड़ते हैं, उसे हिम्मत दिलाते हैं तथा कुछ सार्थक करते रहने की प्रेरणा देते हैं। वे विपरीत

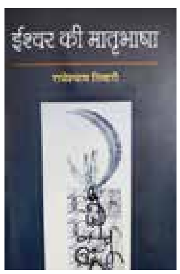

पुस्तक का नाम : समय जल-सा
(रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताएँ)
संपादक : ओम निश्चल
प्रकाशक : सर्वभाषा ट्रस्ट
जे-49, गली नं. 38, राजापुरी,
उत्तम नगर, नई दिल्ली- 110059
पृष्ठ : 144 मूल्य : 210/

परिस्थितियों में केवल रुदन की प्रवृत्ति को कविकर्म नहीं मानते, अपितु कर्तव्यों के पथ पर चलाते हैं।

संग्रह की पहली कविता 'चल रहा हूँ' में उनकी सकारात्मकता, ऊर्जा एवं कर्तव्यबोध का कितना सुंदर उदाहरण मिलता है :

आँधियों में भी दिवा का दीप जलना जिंदगी है
पत्थरों को तोड़ निर्झर का निकलना जिंदगी है
चाहता हूँ मैं किसी छाया तले निश्वास ले लूँ
किंतु कोई कह रहा दिन-रात चलना जिंदगी है।

उत्साह के गीत लगभग सभी भाषाओं के साहित्य में लिखे गए हैं, किंतु मिश्र जी की ये पंक्तियाँ जितनी सहजता से निकलकर आती हैं, वैसी अन्यत्र बहुत कम हैं। अमेरिका के अंगरेजी कवि राबर्ट फ्रास्ट द्वारा लिखी गई कविता Stopping by Woods on a Snowy Evening की कुछ पंक्तियाँ बहुत उद्धृत की जाती हैं। वे पंक्तियाँ हैं :

Woods are lovely dark and deep
But I have promises to keep
And miles to go before I sleep
And miles to go before I sleep

निस्संदेह, राबर्ट फ्रास्ट की उपरोक्त पंक्तियाँ और मिश्र जी की पंक्तियों का उद्देश्य समान है, किंतु कहन में जो सौंदर्य मिश्र जी ने डाल दिया है, वह राबर्ट फ्रास्ट की पंक्तियों में नहीं है। हाँ, यह बात अलग है कि राबर्ट फ्रास्ट की पंक्तियाँ विश्व स्तर पर ख्यात हैं, क्योंकि पाश्चात्य जगत का प्रचारतंत्र तीव्र है। देखा जाए तो मिश्र जी की पंक्तियों तथा राबर्ट फास्ट की पंक्तियों में जीवन-दर्शन का भेद है। जहाँ अंगरेजी कवि वनों की प्रिय सघनता के वशीभूत रुकना चाहता है, परंतु अपने लक्ष्य या उद्देश्य की पूर्ति के लिए सोने से पहले पहुँच जाना चाहता है, वहीं भारतीय जीवन-दर्शन में बिना रुके चलते रहने को ही जीवन माना गया है, किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए नहीं। मिश्र जी अगली कविता 'जिंदगी की राह पर' में इसी विचारधारा पर मुहर लगा देते हैं :

आ रहा उस पार से उस पार तक चलता रहूँगा
विश्व में जब तक निशा तब तक सदा जलता रहूँगा
विश्व की हर एक लय पर बाँधता गति की अमर ध्वनि
दो पगों से नापता युग की अमरता जा रहा हूँ।

मिश्र जी प्रतिबद्धता के कवि हैं। उनकी प्रतिबद्धता उन सभी जनों और सिद्धांतों से है, जो विशिष्ट न होने के कारण उपेक्षित हैं। वे बहुमूल्यता नहीं, अमूल्यता का राग गाते हैं। ऊँचे आसन पर बैठे हातिमताई जैसे लोगों एवं वस्तुओं के प्रति उनके मन में किसी प्रकार का सम्मान्य भाव नहीं है। उनके साहित्य की यही विशेषता उन्हें युगबोध का कवि बनाती है। वे फुटपाथ के किनारे जीवन जी रहे मेहनतकश मजदूरों, दो पैसे में मिलने वाली उनकी खुशियों तथा मिट्टी और ईंट के चूल्हे पर बदकती हुई दाल और फूलती हुई रोटी का उत्सव मनाते हैं। उनके लिए 'सुखी' की परिभाषा क्या है, यह 'सुखी लोग' कविता में देखने लायक है। कितनी छोटी खुशियों को मिश्र जी पकड़ते हैं और उसे सुख में परिवर्तित कर देते हैं :

बच्चे मार खाते हैं, चिल्लाते हैं,
पैसे पाते हैं, पिपिहिरियाँ बजाते हैं लोग
जो हर तनख्वाह पर सीटियाँ बजाते लौटते हैं घर
उत्सवों पर बीवी-बच्चों को
खिलाते हैं आइसक्रीम, घुमाते हैं चिड़ियाघर

मिश्र जी के साहित्य की अधिकांश यात्रा इन्हीं लोगों के बीच से होकर गुजरती है। वे सत्ता को जोर-जोर से ललकारने या उसे पलट देने के बजाय हाशिये के लोगों के सुख-दुख व श्रम को बहुत संवेदनशील ढंग से उभारते हैं, जिससे पाठक उनके साथ स्वयं जुड़ जाता है। वे ऐसे कवि हैं जो स्वयं के कवि होने का ढिंढोरा नहीं पीटते, हल्ला-गुल्ला नहीं करते और न दिखावटी क्रांति का परचम लहराते हैं। वे चाहते हैं कि छोटी चीजें और हाशिये के लोगों को महत्त्व की नज़र से देखा जाए और स्वीकार किया जाए। कहीं-न-कहीं उसका ध्वन्यार्थ यह भी होता है कि जो लोग टिटिहरी की तरह आकाश को अपने पंजों पर उठाए रखने का भ्रम पाले बैठे हैं, उनकी वास्तविकता भी सामने आए।

डॉ. रामदरश मिश्र की कविताएँ सत्ता के विरुद्ध हैं, किंतु उनके लिए सत्ता केवल राजनीतिक सत्ता नहीं है। यह सत्ता प्रशासन से लेकर अभिजात्य

होने का गर्व रखने वाले उन तमाम लोगों तक फैली है, जो समाज, साहित्य, शिक्षा और धर्म से जुड़े हैं। खाली-खाली बातें बनाने वाले उनके निशाने पर रहते हैं, किंतु वे विस्फोट नहीं करते। उनका वार चुपचाप होता है, किंतु गहरा होता है। इसके लिए मिश्र जी प्राय: व्यंग्य का आश्रय लेते हैं। इस संग्रह में ऐसी बहुत-सी कविताएँ मिल जाएँगी, जो व्यंग्य से ओतप्रोत हैं। उनका व्यंग्य वैयक्तिक न होकर विसंगति और पाखंडों के विरुद्ध होता है। 'बोध : छह कविताएँ' के अंतर्गत 'सत्यबोध', 'सार्वभौम बोध', 'मृत्युबोध', आनंदबोध' और 'युगबोध' सामान्य जन के पक्ष में विशिष्टवर्ग पर बहुत चुभता हुआ व्यंग्य करने वाली अभिव्यक्तियाँ हैं।

मिश्र जी की कविताएँ जहाँ एक तरफ जनसरोकारों से जुड़ी होती हैं, वहीं दूसरी तरफ वे जीवनमूल्यों, वैयक्तिक सुख-दुख, रोजमर्रा की अनुभूतियों तथा आम आदमी की जिम्मेदारियों को गंभीरता से रेखांकित करती हैं। इन कविताओं में बड़े सहज-सरल ढंग से गंभीर चिंतन मिलता है। मिश्र जी की कविताओं की एक विशेषता यह है कि उसे समझने के लिए किसी अतिरिक्त प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। उनकी कविताओं का अर्थबोध न केवल व्यापक होता है, अपितु लोकहित में होता है। वे ऐसी कविताओं में एक नई दृष्टि चलते-चलते ही दे जाते हैं। इस संग्रह में संपादक ने उनकी व्यंग्यात्मक कविताओं की संख्या अच्छी खासी रखी है। देखा जाए तो 'जुलूस', 'मधुमक्खियाँ', 'चिड़िया', 'व्यापारी', 'बच्चा' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं, जिनमें वे बहुत सूक्ष्म तंज कर जाते हैं। 'सांस्कृतिक एकता' कविता में उनका व्यंग्य द्रष्टव्य है :

यह दिल्ली है
यहाँ भी रास्ता काट जाती एक बिल्ली
यहाँ भी पत्रा देखकर
जनवादी घोषणाओं की शुरुआत होती है
यहाँ भी बड़े-बड़े सरकारी चौपाल हैं
जहाँ दिनभर केवल बात होती है
यहाँ भी खादी के नीचे कोकशास्त्र
और टेरेलिन के नीचे हनुमान चालीसा
होता है।

वे अपनत्व एवं उत्साह का गीत गाते हैं, परिस्थितियाँ कैसी भी क्यों न हों। कितनी सरलता एवं सूक्ष्मता से वे कर्तव्यबोध करा जाते हैं, यह संग्रह की कविता 'तुम और मैं' में देखा जा सकता है। वे लिखते हैं :

दीया मत बुझाओ
माना कि यह हमारे आराम का समय है
लेकिन तो भी
रोशनी को पुकारने दो
कौन जाने कोई राही भटका हो
घने अंधेरे के जंगल में
याद हैं न वे अपने दिन।

डॉ. रामदरश मिश्र की कविताओं की बात हो तो उसमें आत्मीयता, सहज प्रेम, स्नेह का राग, वसंत का होना पक्का ही है। संग्रह में मिश्र जी के स्पंदनयुक्त अनेक गीतों को लिया गया है। इसमें 'मेरी राह न बाँधो', 'एक नीम मंजरी', 'लगे बोलने काम-काज', 'आओ बात करें' जैसे प्रसिद्ध एवं बहुश्रुत गीत हैं। तमाम गोष्ठियों एवं कार्यक्रमों में इन गीतों को गाते हुए मिश्र जी को खूब सुना गया है। संग्रह में भी ऋतुप्रेम की उनकी कुछ प्रसिद्ध कविताएँ संकलित हैं। कहना होगा कि मिश्र जी के विपुल काव्य संसार से संपादक ने लगभग हर प्रकार की कविताएँ उठाई हैं, जिससे मिश्र जी के किसी नए पाठक को भी उनके साहित्य के व्यापक-विस्तृत आयामों का बोध हो जाएगा।

संग्रह का चयन और संपादन प्रसिद्ध कवि, गीतकार और आलोचक ओम निश्चल जी ने किया है। ओम निश्चल जी मिश्र जी के नजदीकी ही नहीं, उनके साहित्य के गंभीर अध्येता रहे हैं। उन्होंने हिंदी काव्य साहित्य का गहन अध्ययन-मनन किया हैं। यही कारण है कि संग्रह में ली गई कविताओं का कालखंड, विषयबोध एवं भावबोध व्यापक और प्रभावी है। संग्रह के लिए ओम निश्चल जी ने एक विस्तृत भूमिका लिखी है, जिसमे वे मिश्र जी की ही नहीं, अपितु मिश्र जी की समकालीनता में कविता की प्रकृति व विकास की पूरी यात्रा करा देते हैं। वास्तविकता यह है कि उस भूमिका के बाद संग्रह के लिए किसी समीक्षा की आवश्यकता नहीं रह जाती। वे मिश्र जी के प्रस्तुत संग्रह के बहाने उन पर एक बेहद प्रासंगिक एवं उपयोगी लेख लिख जाते हैं। नि:संदेह, मिश्र जी का यह संग्रह उनके कविरूप को जानने-समझने के लिए नितांत उपयोगी है।

समीक्षक
हरिशंकर राढ़ी

बहुआयामी निबंधों का संग्रह

हिंदी गद्य साहित्य विगत करीब दो सौ वर्षों में ही पल्लवित और पुष्पित हुआ है। इसके पूर्व हिंदी साहित्य में काव्य या पद्य की ही प्रधानता रही है। हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक और निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल निबंध को गद्य की कसौटी मानते हैं और उसे हृदय और बुद्धि के समन्वय की विधा बताते हैं जिसमें वैयक्तिकता, विचार प्रधानता तथा सुसंबद्धता आवश्यक गुण के रूप में मौजूद होते हैं।

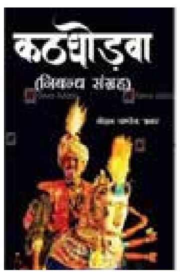

पुस्तक -कठघोड़वा (निबन्ध संग्रह)
लेखक -मोहन पाण्डेय ‘भ्रमर’
प्रकाशक-करेंट पब्लिकेशन, शाहगंज, बदला रोड, आगरा, उत्तर प्रदेश

मूलत: कवि श्री मोहन पाण्डेय भ्रमर कृत निबंध संग्रह ‘कठघोड़वा’ में संकलित निबंधों को पढ़ते हुए लगता है कि पाठक अपने परित: प्रकृति, परंपरा और परिवेश से सक्रिय संवाद स्थापित कर रहा है।

कठघोड़वा में संकलित सभी 29 निबंधों से होकर गुजरना पाठक के लिए बहुआयामी विविधवर्णी कुछ कुछ तिलस्मी सुरंगनुमा दुनिया के भीतर से गुजरने की तरह है, जो चार अलग अलग दरवाजों से बाहर खुलती हो। इन चारों दरवाजों को हम इस रूप में देख सकते हैं।

प्रकृति और पर्यावरण की चिंता मैं जंगल हूँ, विकास की दौड़ में नदी का संदेश, पगडंडी की पीड़ा, जाड़े की रात और सियार, टेसू, यमुना की लहरें ऋतुराज बसंत, सरग दीदा पानी दे, टिटिहरी के अंडे और पारस पत्थर इन सभी निबंधों में इस बात की चिंता है कि मनुष्य जाति अपने स्वार्थ में कहीं न कहीं उसे प्रकृति प्रदत्त वरदानों की अनदेखी करके उनका अंधाधुंध दोहन करते हुए इन्हें भारी नुकसान पहुंचा रहा है । इनकी प्रचुरता मनुष्य के नृशंस आचरण से अत्यल्पता की सीमा तक पहुंच गई है, जो अगली पीढ़ियों के लिए अभिशाप बनने वाली है। जंगल, नदी, टेसू के सुंदर फूल, ऋतुराज बसंत मानव जीवन को अपने कल्याणकारी स्वभाव के चलते सुंदर, सुविधायुक्त, प्रसन्न, समृद्ध और नीरोग बनाते हैं, ये सभी परोपकार के प्रतीक हैं जो बिना किसी से कुछ लिए सर्वदा देने का भाव रखते हैं अतएव इनका संरक्षण करना,

प्रकृति में इन्हें बनाए रखना परम मानवधर्म है, इनके अस्तित्व पर ही मानव का अस्तित्व अवलंबित है। कई निबंधों में दंत कथाओं और लोक कथाओं का दृष्टांत देते हुए मानव जाति को सर्व कल्याणकारक बनने का सुखद और शाश्वत संदेश देने का प्रयास किया गया है।

लोक कलाकारों की पीड़ा का स्वर : कठघोडवा शीर्षक के प्रथम निबंध तथा बहुरूपिया, मिसकारन की चिड़िया, बांस गड़उआ, अन्नदाता और लोक संस्कृति में पखावज ऐसे निबंध हैं जिनमें समाज के उपेक्षित, अशिक्षित तथा परंपरागत रूप से पैतृक लोककलाओं का प्रदर्शन कर दूसरों का मनोरंजन करके चंद पैसे कमाकर अपनी रोजी रोटी का जुगाड़ करने वाले लोक कलाकारों के पीड़ा के स्वर मुखरित हुए हैं। ये सभी लोक कलाएं श्रमाधारित हैं, पर आज के बदलते तकनीकी रूप से विकसित परिवेश में जबकि मनोरंजन के विविध उच्च स्तरीय साधन सुलभ हो गए हैं, इन कलाकारों को मान-सम्मान नहीं मिलने से रोजी रोटी का गंभीर संकट खड़ा हो गया है, गरीबी, अभाव और अशिक्षा का मार झेलते हुए इनकी कला तो नष्ट हो ही रही है, इनमें से अधिकांश कलाकार अपना पैतृक व्यवसाय छोड़कर जरायम और अपराध की दुनिया में आने के लिए विवश कर दिए गए हैं।

परंपरा और संस्कृति की विरासत : निबंध संग्रह के इस गवाक्ष में जो निबंध उल्लेखनीय हैं उनमें ‘पारंपरिक पर्व त्यौहार और हमांरा जीवन-कालकूट, बरियार और जीउतिया तथा भारतीय

ज्ञान परंपरा प्रमुख हैं। निबंधकार ने अपने समाज के संरचनात्मक तत्वों में पारंपरिक तीज त्योहारों को प्रमुख माना है, उन्होंने तीज त्योहारों को उत्सवधर्मिता से जोड़ते हुए बताया है कि इनसे समाज में सक्रियता और जीवंतता बनी रहती है, भारतीय समाज का प्रत्येक दिन किसी-न-किसी पूजा पाठ और उत्सव का होता है, जिससे समाज का प्रकृति से गहरा साहचर्य और जुड़ाव प्रगट होता है। आस्था, विश्वास, उम्मीद और कुछ नया करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। कालकूट नामक निबंध में एक पौराणिक कथानक के द्वारा यह बताने की चेष्टा की गई है कि जीवन में अगर कहीं कुछ अच्छा है तो वहीं कुछ बुरा भी है, अमृत के साथ विष का भी सामान अस्तित्व है, गंभीर रोगों के शमनार्थ विष का प्रयोग किया जाता है।

बरियार और जीउतिया निबंध पुत्रों की दीर्घायु के लिए मां के अनन्य प्रेम और समर्पण का प्रतीक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, जिसमें चौबीस घंटे निर्जल व्रत रखकर माताएँ बरियार नामक वनस्पति को साक्षी बनाकर उसे पूजती हैं यानी उस साधारण से पौधे के व्याज से समाज में वनस्पतियों के महत्त्व को रेखांकित किया जाता है। परन्तु देखा जाता है कि पुत्र के लिए सर्व सुख न्योछावर करने वाली माँ को भी कुपुत्रों की उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। भारतीय जान परंपरा निबंध में लेखक ने अनेक उदाहरणों से श्रुति आधारित प्राचीन भारत के ऋषि मुनि साधकों और चिंतकों द्वारा वसुधैव कुटुंबकम् की विश्व कल्याणकारी उदात्त भावना से स्थापित शास्त्रीय ज्ञान परंपरा के महत्त्व को बताते हुए उसकी विशेषताओं को जीवन में उतारने के लिए सर्वश्रेष्ठ बताया है।

स्वतंत्र प्रकृति के निबंध : निबंधों के इस चौथे वर्ग में अलग अलग विषयों पर स्वतंत्र चिंतन किया गया है। 'आखिर कुत्ता क्यों आवारा होता है' में अपने मालिक के प्रति दैन्य और समर्पण दिखाने वाला श्वान सबसे अधिक उपेक्षणीय होकर आवारा कहा जाता है, जबकि क्रूर और हिंसक पशुओं को आवारा कहने की हिम्मत किसी में नहीं होती, यही मनुष्य का दौरंगा स्वभाव है। 'हीरा परखे जौहरी' निबंध में लेखक आत्मसंघर्ष की वेदना से गुजरकर समाज के लिए उपयोगी बनने का भाव व्यक्त करता है। 'मैले मन से धरम न होय' में लोक कल्याण के कार्य में मन की शुचिता और निर्मलता की आवश्यकता पर बल दिया गया है। 'मै मै बड़ी बलाय' में मनुष्य के अहंकार को उसकी उन्नति में बाधक तत्त्व निरूपित किया गया है। जीवन में न बने अधीर में कुछ पाने के लिए धैर्य के महत्त्व को रेखांकित किया गया है। धीरे-धीरे तम में मना धीरे सब कुछ होय। 'बगुला मैं क्यों है?' में लेखक ने विष्णुशर्मा नामक नीति पंडित की एक कथा का उद्धरण देते हुए बताया गया है कि लक्ष्य की प्राप्ति बंगुले की भांति मौन साधना से ही संभव है। 'भोर की वंशी' निबंध में ग्रामीण जीवन के श्रम सिक्त सौंदर्य को अनुरंजित किया गया है। इसी प्रकार 'कथा की व्यथा' में हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति के गूढ़ तत्त्व जो दादी-नानी की कथाओं के माध्यम से बच्चों में सहज ही आरोपित करके उन्हें जीवन संघर्ष के लिए परिपुष्ट कर दिया जाता था, आज तिरोहित और उपेक्षित हो गए हैं, परिणामस्वरूप आज सामाजिक विघटन के रूप में उसके परिणाम सामने है, इसे बताने की चेष्टा की गई है।

देखा जाय तो इस निबंध संग्रह के माध्यम से निबंधकार मोहन पाण्डेय भ्रमर ने समाज को अपने अनुभव और चिंतन के उत्कृष्ट आयामों द्वारा नित्य प्रति के कार्य व्यापार, व्यवहार, आचार-विचार, खान-पान, नीति-नियम, शिक्षा-संस्कार, धर्म-कर्म, परिवेश-पर्यावरण, मानवीय संबंधों की अहमियत के साथ घोर कलयुगी प्रतियोगितात्मक होड़ में संयत जीवन दर्शन को बचाए रखने का दूरदर्शी व्यापक सकारात्मक संदेश देने का भगीरथ प्रयास किया है, ताकि ढहते जीवनमूल्यों को बचाते हुए इसे उन्नति के पथ पर अग्रसर रखा जा सके।

कुल मिलाकर श्री मोहन पाण्डेय भ्रमर का निबंध संग्रह 'कठघोडवा' इन्हें एक ललित निबंधकार के रूप में स्थापित करने की पुरजोर क्षमता प्रदर्शित करता है। निश्चय ही काव्य विधा के साथ गद्य विधा के सशक्त रचनाकार के रूप में श्री भ्रमर की ख्याति विद्वानों को हर्षित एवं प्रफुल्लित करेगी।

समीक्षक :
इंद्र कुमार दीक्षित
5/45, मुंसिफ कालोनी,
निकट वन विभाग कार्यालय राम नाथ
देवरिया (उत्तरी) देवरिया।
मो. 8052675208

कहानियों में तनाव और करुणापूर्ण स्थितियों का मार्मिक अंकन

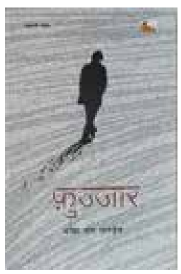

पुस्तक का नाम : फुंज्जार (कहानी-संग्रह)
लेखक : धनेश दत्त पाण्डेय
संस्करण : प्रथम 2025
प्रकाशक: न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन. सी-515, बुद्ध नगर, इन्द्रपुरी, नई दिल्ली 110012
पृष्ठ : 224
मूल्य : 450/-

धनेश दत्त पाण्डेय हिंदी के जाने हुए कथाकार हैं । उनका सद्यः प्रकाशित कहानी संग्रह 'फुज्ज़ार' (2025) देखकर मुझे अतीव प्रसन्नता हुई (क्योंकि उन्होंने विगत दो दशकों से सृजनकार्य स्थगित-सा कर दिया था, अब इस संग्रह के आ जाने पर एक आस बंधी है और वे पुनः सृजन की राह पर पूरी त्वरा से चल पड़े हैं ।)

समीक्ष्य संग्रह की कहानियों से यह बोध होता है कि जीवन में जहाँ भी मनुष्यता की सघन या विरल उपस्थितियाँ हैं, उन्हें सहेजना इन कहानियों का वैशिष्ट्य है । कहानीकार इन कहानियों के ज़रिए आज के अमानवीय, नृशंस और असंवेदनशील समय में उम्मीद की गर्माहट बचाकर रखना चाहते हैं, क्योंकि परिस्थितियाँ सारी मानवीय उम्मीदों का गला घोंट देने के लिए तरह-तरह का प्रपंच रच रही हैं ।

विवेच्य संग्रह की पहली कहानी 'मौत के आगोश में' में सरकारीतंत्र की अव्यवस्था तथा दायित्व निर्वहन की जगह केवल खानापूर्ति का सुंदर उदाहरण देखने को मिलता है । रेल के वातानुकूलित बोगी में एक महिला सहयात्री से बतियाते हुए नैरेटर अपनी यात्रा तय कर रहा होता है कि मालगाड़ी से टकराकर भयंकर रेल दुर्घटना घटित होती है । चीख-पुकार, अफरा-तफरी के बीच घयलों को कॉलेज़ के सर्जिकल वार्ड में पहुँचाया जाता है । नैरेटर भी घायल है । बावजूद, उसे सहयात्री की चिंता होती है । संयोग से वह भी नैरेटर के बगल वाले बेड पर ही रखी जाती है । सहयात्री गंभीर रूप से घायल है । वहाँ उपचार करनेवाली नर्सो की आपसी बातचीत से नैरेटर को पता चलता है कि उसके बचने की उम्मीद बहुत कम है । वह अंतर्मन से पुकारता है, 'प्रभो, रक्षा करो ।' वह सारी घटनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण करता है और पाता है कि घायलों की सुरक्षा के बहाने उनके तीमारदारों या स्वजनों-परिजनों को पूरी सख्ती से बाहर ही रोक रखा गया है । नैरेटर को पता चलता है कि सहयात्री के परिवार वाले आ चुके हैं और इलाज़ के लिए बाहर ले जाना चाहते हैं तो उसे संतोष होता है- "मैडम को उनका परिवार मिल गया ।" लेखक की सघन पर्यवेक्षण क्षमता सरकारी व्यवस्था की विद्रूपता और स्वास्थ्यकर्मियों की हृदयहीनता एवं खानापूर्ति को उजागर कर देती है ।

'बेअदबी' मूल्य-निष्ठा की कहानी है जिसको कहानीकार ने मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है । परन्तु आज के नृशंस और खंडित समाज में मानवीय मूल्यों को 'कहना-सुनना और जीना' आग की दरिया पर तैरने जैसा है । डॉ. जगदीश गुप्त लिखते हैं, "साहित्य में ही मूल्य प्रतिबिंबित एवं समाविष्ट हो पाते हैं", जिनको साहित्यकार ने अपने अंतःकरण में धारण किया है और जो उनके संवेदनशील व्यक्तित्व के अविभाज्य अंश बन चुके हैं ।

संकलन की 'भोंदू' शीर्षक कहानी भी शील, सदाचार, परोपकार, परदुःखकातरता और उदात्तता को जीने वाले एक मजदूर की कहानी है, जो मनुष्यता को जीवन का सर्वोच्च और अंतिम लक्ष्य मानता है । नैरेटर को अपनी विला बनाने के क्रम में

अपने सहकर्मी इनकम टैक्स ऑफिसर बासकीत राम से मजदूर भोंदू का पता चलता है । बासकीत राम के अपार धन-दौलत के संग्रह पर लेखक का तंज है कि नियम की आड़ में उन्हें औरों से पहले प्रमोशन मिला और अपने कौशल-चातुर्य से उनहोंने रेसकोर्स में सारी सुविधाओं से युक्त बड़ा-सा विला बनवा लिया जिसमें डामर के बने फुटपाथ और हैजेज, स्विमिंग पूल, लॉन, कोर्ट, मैनीक्योर पार्क, जिम, जाँगिंग रूट, सब कुछ हैं । नैरेटर जंगल के एक कोने में बनी झोपड़ी में से ढूंढकर भोंदू को काम पर लगा लेता है । भूमि पूजन को लेकर जब पंडित आपस में ही अपने वर्चस्व को लेकर विवाद करते हैं तो भोंदू बड़ी विनम्रता से उनके पाखंड पर प्रहार करते हुए उस विवाद को सुलझा देता है और बदले में गृह स्वामी के लाख कहने के बावजूद उनसे अपनी दिहाड़ी के अतिरिक्त कुछ भी लेना स्वीकार नहीं करता है । निर्माण कार्य के क्रम में ही बासकीत राम के बीमार होकर अस्पताल में भर्ती होने की खबर मिलती है । डायबिटीज़, वाँस्कुलर डिसऑर्डर तो था ही, किडनियाँ भी फेल हैं ! सवाल है कि किडनी डोनेट कौन करे ? बेटे की परीक्षा है एम.टेक की । बेटी सगाई के बाद परायी हो गयी । पत्नी कर सकती है मगर साहेब को कुछ हो गया तो उनकी दौलत को कौन संभालेगा ! नैरेटर की बातचीत से वहाँ काम करते भोंदू भी इस बात से अवगत हो जाता है । वह कहता है कि बेटा-पत्नी, स्वजन-परिजन तो सेमल के फूल हैं । इन्सान में इंसानियत ही नहीं बची तो क्या बचा ! नैरेटर गुस्से में उससे कहता है, 'तुम्हीं दे दो अपनी किडनी, इतने परमार्थी हो तो ।' भोंदू कहता है कि वह तो उन साहेब का नून खाया है । एक बरस तक उनके यहाँ मजदूरी की है । वह जरुर अपनी एक किडनी दे देगा । नैरेटर अवाक ! ओपरेशन के बाद इसका कैसे गुजरा होगा ? काफी दिनों तक काम तो कर ही नहीं पायेगा । वह उसे समझाने की कोशिश करता है, लेकिन वह कहता है, 'जो पर पीर जान सकता है वही पीर कहावत है ।' वह अपना एक किडनी दे देता है और बदले में एक धेला तक नहीं लेता । साहब की जान बच जाती है । कुछ महीनों बाद ऑफिस भी जॉइन कर लेते हैं । भोंदू काम पर नहीं आ पाता है और उचित आहार, दवा व सुश्रुषा के अभाव में मृत्यु को प्राप्त होता है । निर्माण कार्य पूरा होने के बाद पूजा हेतु नैरेटर जब बाल्दी नदी जल लेने जाता है तो उसे भोंदू की अर्थी ले जाते लोग दिखवाई देते हैं । नैरेटर उस दिवंगत महामानव की मूल्यनिष्ठा को प्रणाम करता है । कहानी पाठक को मानवीय संवेदना के नए धरातल पर ले जाकर एक नए भाव-बोध संप्रेषित करती है ।

"कौन कहता है आसमां में सूराख हो नहीं सकता, एक पत्थर तो तबियत से उछालो यारों" दुष्यंत कुमार के इस बहुचर्चित शेर को चरितार्थ करती हुई इस संकलन की एक कहानी है -'आसमां में सुराख' । यह पौरुष संपन्न एक जीवंत नायक लौंगी की कहानी है जो अब "कैनाल मैन" के नाम से ख्यात भी हो चुका है । लौंगी अपनी ज़िद्द में आकर अकेले के अनथक श्रम से बंगेठा पहाड़ से अपने गाँव तक पानी लाने के लिए नहर खोदता है और कई तालाब भी बना डालता है । अब खेतों के लिए न पानी की कमी रहती है और न ही बाढ़ का डर बचा है । तालाब भी अब लबालब भरे होते हैं, नहर भी । खेतों में फसल-ही-फसल । पूरे गाँव की खुशहाली छा जाती है । हौसलों, उम्मीदों और श्रम की महत्ता को स्थापित करती एक खुबसूरत कहानी है यह ।

संकलन की शेष कहानियों में भी कहानीकार तनाव, संघर्ष एवं करुणापूर्ण स्थितियों द्वारा रचना के संवेदना पक्ष को गहरा पाने में समर्थ रहा है । इसमें कहानीकार का सबसे बड़ा बल उसकी स्वयं की आशा और अडिग आस्था है । इन कहानियों में पाठकों को प्रभावित करने की असंदिग्ध क्षमता है । आज के समय-समाज को उसकी यथार्थता मंस चित्रि करने वाले कथाकार धनेश दत्त पाण्डेय की अपनी सकारात्मक चेतना ही कथा-साहित्य में उन्हें विशिष्ट बनाती है । भाषा, कथानक, कथ्य और शिल्प की दृष्टि से भी यह एक महत्त्वपूर्ण संकलन है ।

समीक्षक

डॉ. वरुण कुमार तिवारी

खोज – खबर

आलोचना पुस्तक 'ग़ज़लकार डी एम मिश्र : सृजन के समकालीन सरोकार' का लोकार्पण

देवरिया। 'पतहर' पत्रिका के तत्त्वावधान में नागरी प्रचारिणी सभा के तुलसी सभागार में विभूति नारायण ओझा द्वारा संपादित आलोचनात्मक पुस्तक 'ग़ज़लकार डी एम मिश्र : सृजन के समकालीन सरोकार' का लोकार्पण सहपरिचिर्चा एवं काव्य पाठ का आयोजन संपन्न हुआ।

कार्यक्रम को विशिष्ट अतिथि के रूप में संबोधित करते हुए वरिष्ठ साहित्यकार, कवि, विचारक, संपादक कौशल किशोर ने कहा कि डी एम मिश्र समकालीन गज़लकार हैं। इनकी गजलें हिन्दी की कविता की तरह समकाल से मुठभेड़ करती हैं। इनमें जीवन का एहसास है। गांव की मिट्टी और आबोहवा है। समाज का द्वन्द्व है। सत्ता और व्यवस्था से टकराती हैं। यदि प्रेम और करुणा है तो वहीं प्रतिरोध और अन्याय का प्रतिकार है। इनके यहां जो प्रतिरोध है, वह विरोध के आगे की चीज है।

समारोह में बीज वक्तव्य देते हुए डॉ. चतुरानन ओझा ने कहा कि डी एम मिश्र का सरोकार मेहनत और पसीने वालों से है। जिस तरह दुष्यंत और अदम की गजलें जबान पर चढ़ जाती है, मिश्र जी की गजलों में भी यही खासियत है।

कार्यक्रम को संबोधित करते हुए साहित्यकार अचल पुलस्तेय ने कहा कि डी एम मिश्र ग्रामीण जीवन के हालात को लेकर ग़ज़लें लिखी हैं, वे जनवादी कवि है।

समारोह की अध्यक्षता करते हुए वरिष्ठ साहित्यकार इंद्र कुमार दीक्षित ने कहा कि डी एम मिश्र की ग़ज़लें आम बोलचाल की भाषा में लिखी गई हैं। वे मिट्टी की महक की बात ग़ज़लों में करते हैं। वे श्रम में सौंदर्य की तलाश करने वाले ग़ज़लकार हैं।

डी एम मिश्र ने 'पतहर' और इसके संपादक विभूति नारायण ओझा और उनकी टीम के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहा कि मौजूदा दौर ऐसा है जहां हर अच्छी चीज को गंदला किया जा रहा है, ऐसे में झूठ को बेनकाब करना, अन्याय का विरोध और सच के पक्ष में खड़ा होना जरूरी है।

कार्यक्रम के दूसरे सत्र में उपस्थित कवियों सर्व श्री कौशल किशोर मणि, योगेंद्र पांडेय, दयाशंकर कुशवाहा, प्रेम कुमार मुफलिस, सौदागर सिंह, अंजलि अरोड़ा, सरोज कुमार पांडेय, इंद्र कुमार दीक्षित, क्षमा श्रीवास्तव, विकास तिवारी, योगेंद्र तिवारी योगी आदि कवियों ने अपनी कविताओं का पाठ भी किया।

कार्यक्रम में मुख्य रूप से किसान नेता शिवाजी राय, सुभाष राय, सर्वेश्वर ओझा, सौरभ मिश्रा, राम प्रकाश सिंह, सत्येंद्र यादव, विकास दुबे, कृष्णानंद पांडेय, सत्य प्रकाश सिंह, संतोष, डॉक्टर आलोक पांडेय, नित्यानंद त्रिपाठी, रानू पांडे, करन त्रिपाठी, सोनू सुजीत, विकास तिवारी, रमेश कुमार, क्रांति कुमार, राकेश कुमार, प्रभानंद तिवारी आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

चक्रपाणि ओझा
प्रबंध संपादक 'पतहर', देवरिया
मोबाइल- 99192 94782

'फुज्जार' कहानी संग्रह की पुस्तक समीक्षा व राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन

विद्यार्थी मंच, मुक्तांचल व गाथा प्रकाशन के संयुक्त तत्त्वावधान में कथाकार धनेश दत्त पाण्डेय के कहानी संग्रह 'फुज्जार' की समीक्षा हेतु पश्चिम बंगाल के हावड़ा में एक विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में साहित्य जगत के अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों, शिक्षकों, शोधार्थियों और विद्यार्थियों ने सहभागिता की।

कार्यक्रम का आरंभ स्वागत वक्तव्य से हुआ, मंच संचालिका खुदीराम बोस कॉलेज की हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. शुभ्रा उपाध्याय ने आत्मीयता के साथ अतिथियों का स्वागत किया। उन्होंने कहा कि औपचारिकता के अभाव के बावजूद कार्यक्रम में आत्मीयता की कोई कमी नहीं रहेगी। मंच पर उपस्थित अतिथियों में पूर्व प्राध्यापक डॉ. अरुण कुमार, मुक्तांचल पत्रिका की संपादक डॉ. मीरा सिन्हा, डॉ. अरुण होता, डॉ. सत्या उपाध्याय, प्रो. मंजु रानी सिंह, मृत्युंजय श्रीवास्तव, डॉ. मनीषा झा, डॉ. इतु सिह, कथाकार सिराज खान बातिश और स्वयं प्रख्यात कथाकार धनेश दत्त पाण्डेय शामिल थे।

प्रो. रामदरश मिश्र को पद्मश्री सम्मान

अपनी जन्मशताब्दी मना चुके साहित्य मनीषी प्रो. रामदरश मिश्र को इस वर्ष भारत सरकार ने पद्मश्री सम्मान से अलंकृत किया। वार्धक्य एवं स्वास्थगत समस्याओं के कारण प्रो. मिश्र राष्ट्रपति भवन में आयोजित अलंकरण समारोह में उपस्थित नहीं हो पाए। अंततः गृह मंत्रालय, भारत सरकार के अधिकारियों ने प्रो. मिश्र जी के द्वारका, नई दिल्ली आवास पर आकार उन्हें पद्मश्री सम्मान से अलंकृत किया। इस अवसर पर प्रो. मिश्र जी के परिवार एवं आत्मीय जन उपस्थित रहे।

RNI No. DEL HIN/2002/6902 DCP (L) No. F2 (S-19) PRESS/2002 SAMKALEEN ABHIVYAKTI

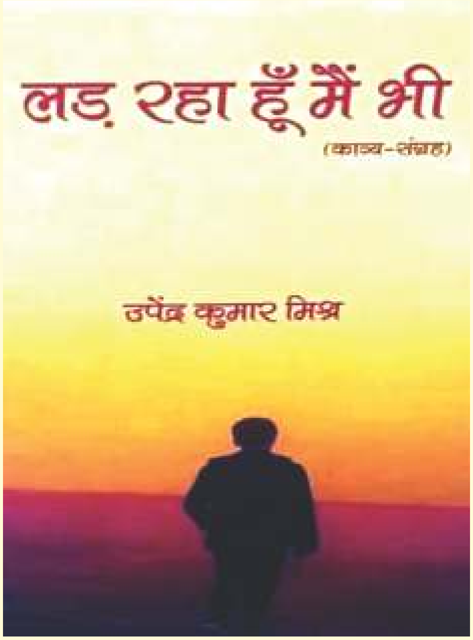

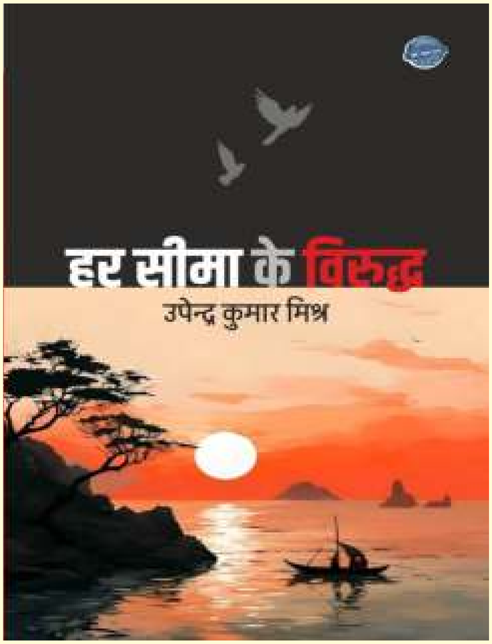

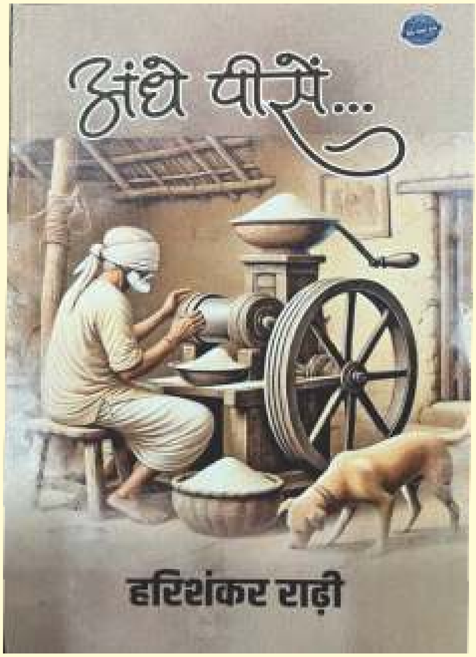

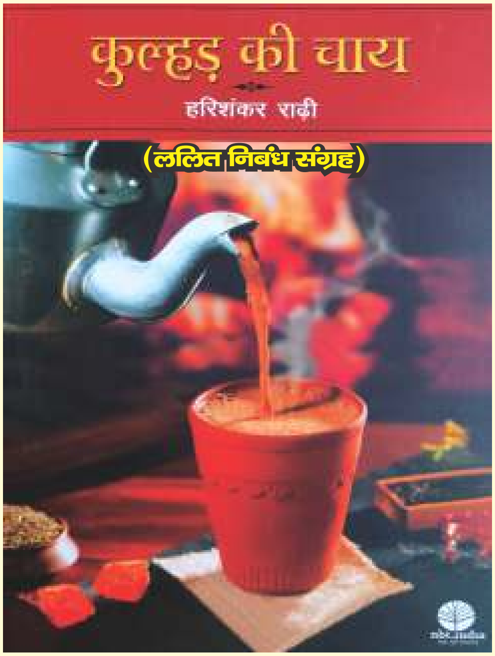

मुद्रित पुस्तक /PRINTED BOOK

सेवा में,

प्रेषक: उपेन्द्र कुमार मिश्र
संपादक - समकालीन अभिव्यक्ति
फ्लैट नं० 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं० 7,
महरौली, नई दिल्ली - 110030